समाज की तेजस्विता को हरण करनेवाले आज के विलासपूर्ण, कुत्सित और वासनामय वातावरण में स्त्री-पुरुष, गृहस्थी-वानप्रस्थी, विद्यार्थी एवं वृद्ध सब प्रकार के लोगों के लिए अनुपम सामग्री है ।

इस पुस्तिका में ऋषियों के ऐसे रत्न भरे पड़े हैं कि पवित्र नारियाँ यदि इस चयन का बार-बार अवलोकन करेंगी तो अवश्य लाभ होगा ।

इस पुस्तिका में साधक के लिए वह खजाना है जिसे पाकर वह परम ऐश्वर्यवान, निश्चिन्त हो जाय । महीने में एक बार इस पुस्तक का पठन-मनन करनेवाले की अवश्य सद्गति होगी ।

साधना में आरूढ साधक के लिए आवश्यक सूचनाएं व मार्गदर्शन दिया गया है । गीता के श्लोकों पर पूज्यश्री की अनुभव-संपन्न सरल वाणी के सहज प्रवचन लिपिबद्ध किए गये है ।
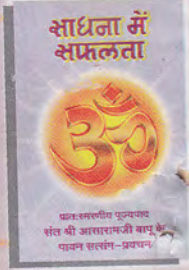
इस पुस्तक में ज्ञानी महापुरुषों, संतों और गुरुभक्तों तथा भगवान के लाड़लों की कथाओं तथा अनुभवों का वर्णन है, जिसका बार-बार पठन, चिन्तन और मनन करके तुम सचमुच में महान् बन जाओगे । तुम्हारा जीवन गुलाब की तरह महक उठेगा ।
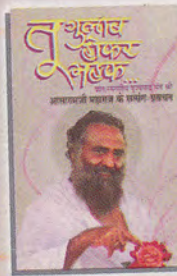
जिन उपायों से व्यक्ति का जीवन महानता की ओर चलता है, जीवन का विकास होता है वे उपाय, संतों के, शास्त्रों के वचन और अनुभव चुनकर, इस पुस्तक में प्रस्तुत किये है ।

आत्मज्ञान के प्यासे, विवेक-वैराग्यवान साधकों. के लिए यह पुस्तक वायुयान का काम करेगी । पूज्यश्री की आत्मानुभूति से छलकते ये वचन देह की आसक्ति और मानसिक दुर्बलताएँ छुड़ाकर आत्म-सिंहासन पर बिठा देते हैं ।
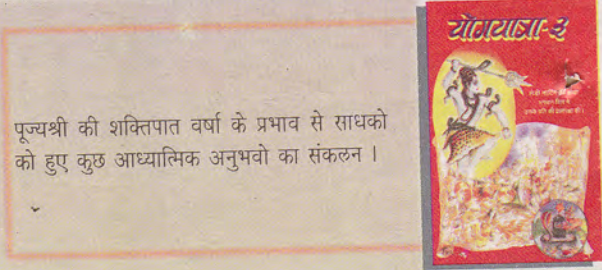
पूज्यश्री की शक्तिपात वर्षा के प्रभाव से साधको को हुए कुछ आध्यात्मिक अनुभवो का संकलन ।

इस पुस्तक में श्रीमद् भगवद्गीता के मुल श्लोक एवम् उनका सरल हिन्दी अनुवाद व प्रत्यक अध्याय का माहात्य दिया गया है । पूज्यश्री की जीवन-झाँकी व आश्रम-दर्शन भी संग्रहीत है ।
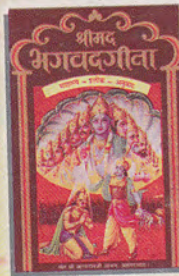
जो प्रेम परमात्मा से करना चाहिए वह प्रेम अगर किसी व्यक्ति , वस्तु, पद से किया तो ईश्वरीय विधान हमें वहाँसे बलात् घसीट लेता है । ईश्वरीय विधान हमारी उन्नति चाहता है । इस ईश्वरीय विधान को समझकर जीना ही सहज साधना है ।
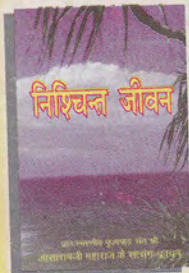
इसमें विवेक-वैराग्य को बढ़ाकर आत्मा-परमात्मा के अभिमुख करानेवांले भिन्न-भिन्न प्रवचन और प्रसंग हैं । कहीं कहीं अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्वज्ञान है तो कहीं कहीं सारगर्भित, सहज समझ में आ जाय ऐसे इशारे हैं ।

परमात्मा से मिलने की तड़प हो तो परमात्मा का मिलना असंभव नहीं है । इसके लिए पुरानी आदतों से लड़ना पड़ेगा ।
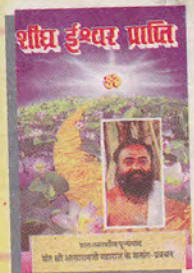
इस पुस्तीकाओं का सेट रजिस्टर्ड पोस्ट पार्सल खर्च सहित १०० रु. का मनीआर्डर/डी.डी. भेजकर प्राप्त कर सकते है ।

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ८
अंक : ६४
९ अप्रैल १९९८

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत, नेपाल व भूटान में

(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) आजीवन : रू. ५००/-

विदेशों में

(१) वार्षिक : US $ 30
(२) आजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी एवं भार्गवी प्रिन्टर्स, राणीप, अमदावाद में तथा पूर्वी प्रिन्टर्स, राजकोट में छपाकर प्रकाशित किया।

प्रस्तुत है...

१. काव्यगुँजन ... २
★ गुरुप्रसाद
★ 'ऋषि प्रसाद' से सब कुछ पाया
२. साधनानिधि ... ३
★ इच्छापूर्ति नहीं किन्तु जिज्ञासापूर्ति
३. श्रीराम-वशिष्ठ संवाद ... ९
★ अहंकार के दोष
४. साधना-प्रकाश ... १०
★ सच्चा पुरुषार्थ
५. जीवन सौरभ ... १२
प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज : एक दिव्य विभूति
६. योगमहिमा ... १५
★ तीन प्रकार की विद्याएँ
७. प्रेरक प्रसंग ... १९
★ सबमें तू ही तो है
★ युक्ति से मुक्ति
८. युवा जागृति संदेश ... २१
★ छत्रपति शिवाजी की महानता
★ मौन की महिमा
९. सर्वदेवमयी गौमाता ... २४
★ गौमाता : रोग-दोषनिवारिणी
१०. कथाप्रसाद ... २६
★ चार प्रश्न
११. शरीर-स्वास्थ्य ... २८
★ स्वास्थ्य पर स्वर का प्रभाव
★ आयुर्वेद : निर्दोष एवं उत्कृष्ट चिकित्सा पद्धति
★ ग्रीष्म ऋतुचर्या
१२. आपका खत मिला... ३०
१३. संस्था समाचार ... ३१

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग YES चैनल पर
रोज सुबह ८-३० से ९. दोपहर १-३० से २.

अब आश्रम विषयक जानकारी
Internet पर उपलब्ध है : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

'गुरुप्रसाद'

ऋषि प्रसादोऽस्ति गुरुप्रसादः
रागादि मुक्तो विषयैर्विरक्तः ।
जीवो गुरुणां लभते प्रसादं
केनाऽपि पुण्येन पुरातनेन ॥
श्रृणोति मूढो न गिरं गुरूणां
यतो हि माया न जहाति पिण्डम् ।
कुटुम्बमोहेन विलिप्तबुद्धिः
पुनः पुनर्गर्भगुहामुपैति ॥
कायेन वाचा गुरवः 'प्रसादे'
कुर्वन्ति नित्यं पथदर्शनं ते ।
पीयूषवर्षां विदधाति नित्यं
गङ्गा स्वयं ते गृहमागतास्ति ॥
आशास्ति पूर्वं परत च रामः
बापू सदा पूज्यजनस्य बोधः ।
भवार्णवे यो जलजात रूपः
त्वं तस्य पादे भव चञ्चरीकः ॥

संत श्री आसारामजी बापू के आश्रम द्वारा प्रकाशित यह 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका गुरुप्रसाद है... श्री आसारामजी बापू की पावन वाणी का प्रसाद है। यह प्रसाद राग-द्वेष आदि से मुक्त है और विषय-वासनाओं से विरक्त है अर्थात् यह राग और विषयों से रहित है। यह गुरुओं का प्रसाद है और गुरुओं का यह प्रसाद जीव अपने किन्हीं पुरातन पुण्यों के प्रसाद से ही प्राप्त कर पचा सकता है, अन्यथा नहीं।

यह मूढ़ जीव गुरुओं की वाणी नहीं सुनता क्योंकि संसार की माया जीव का पिण्ड नहीं छोड़ती। परिवार के मोह से मोहित बुद्धिवाला यह जीव बार-बार गर्भरूपी गुफा में प्रवेश करता है अर्थात् माया के आधीन होकर पुनः पुनः जन्म धारण करता है।

गुरुदेव इस 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका के माध्यम से अपनी वाणी एवं शरीर से तेरा पथप्रदर्शन कर रहे हैं। वे नित्यप्रति अपने प्रवचनों द्वारा अमृतवर्षा भी कर रहे हैं। ऐसा लगता है मानो गंगा स्वयं तेरे घर में आ गई है।

पूज्य बापू के नाम का प्रथम शब्द 'आशा' है जो जीव को मोक्षप्राप्ति के लिए आशा रखने का संकेत करता है। उस आशा के बाद ही राम की प्राप्ति हो सकती है। 'बापू' शब्द गुरुरूप में पूज्य जन का बोध करवा रहा है क्योंकि कोई पूज्य संत ही राम से मिला सकते हैं। पूज्य बापू इस संसाररूपी समुद्र में कमल के समान हैं अर्थात् सांसारिकता से अछूते हैं। कवि कहता है कि हे जीव ! तू भी उनके चरणों का भौंरा बन जा। यही मुक्ति का मार्ग है।

- जगदीशचंद्र जी. शास्त्री
सिरसा, हरियाणा।

'ऋषि प्रसाद' से सब कुछ पाया

'ऋषि प्रसाद' से सब कुछ पाया। मिटे दोष दुःख दारिद्रय दावा ॥
सौम्य विचार सदा मन आवा। ज्ञान-भक्ति में चित्त लगावा ॥
'ऋषि प्रसाद' पढ़ो मन लाई। दुर्लभ ज्ञान सुलभ हो जाई ॥
आसाराम संत उपकारी। व्यापक जनहित के व्रतधारी ॥
'ऋषि प्रसाद' पढ़ो मेरे भाई। सकल संताप तुम्हरे मिट जाई ॥
सरल सुबोध ज्ञान गुण-सागर। प्रसन्न होय झट नटवर नागर ॥
'ऋषि प्रसाद' महिमा अति भारी। सब विधि यह मुद मंगलकारी ॥
पढ़ो-पढ़ाओ और भाव जगाओ। नित प्रति 'ऋषि प्रसाद' मन लाओ ॥
सकल कामना सिद्ध हो जाई। जीवन सफल करो मेरे भाई ॥
पुण्य कार्य में देर न लगाओ। आश्रम से झट पत्रिका मँगाओ ॥

- मोहनलाल शर्मा (व्याख्याता)
बालोतरा, राजस्थान।

इच्छापूर्ति नहीं किन्तु जिज्ञासापूर्ति

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

'विषयों की कामना विषयों के उपभोग से कभी शांत नहीं होती, अपितु घी की आहुति पड़ने से अग्नि की भाँति वह अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है।'

(श्रीमहाभारत, आदिपर्व, सम्भव पर्व : ५५.१२)

इच्छापूर्ति करते-करते इच्छा निवृत्त नहीं होती है वरन् इच्छा गहरी हो जाती है। इसी प्रकार कोई इच्छा उठी और पूरी नहीं हुई तो दुःख होता है। दुःख की दासता और इच्छा पूरी होने पर सुख की आसक्ति में मूर्खता बढ़ती चली जाती है।

मान लो, मेरे पास दो कमरे हैं तो मैं पाँच कमरेवाले से प्रभावित हो जाऊँगा। मेरे पास दो लाख रूपये हैं तो दो करोड़वाले से प्रभावित हो जाऊँगा। यदि दो करोड़ को महत्त्व दिया तो अपनी आत्मा का घात हो जाता है। पैसों की महत्ता बढ़ जाती है और अपनी वास्तविक महत्ता दब जाती है। यदि धन पाकर बड़े हो गये तो वह बड़प्पन व्यक्ति का नहीं वरन् धन का बड़प्पन होता है। इस प्रकार तो जड़ का महत्त्व बढ़ जाता है और चेतन का महत्त्व दब जाता है। ...तो यह मूर्खता हुई कि नहीं ? अमिट दब जाय और मिटनेवाले धन का प्रभाव बढ़ जाय तो यह मूर्खता है। शाश्वत दब जाय और नश्वर को अपने ऊपर हावी होने दिया जाय तो यह मूर्खता है।

इच्छापूर्ति करने से दासता बढ़ती जाती है और उसी दासता-दासता में जीवनभर गाड़ी खींचते-खींचते मानव थक जाता है और मरने के बाद भी इच्छापूर्ति की उस मूढ़ता का फल भोगना पड़ता है और चौरासी-चौरासी लाख योनियों में जाना पड़ता है।

राजा ययाति को इच्छापूर्ति के सुख में मजा आ रहा था। अनेक भोगों को भोगते-भोगते भी उनकी भोगों की तृष्णा शांत नहीं हुई एवं शुक्राचार्य के श्राप के कारण असमय ही उन्हें वृद्धत्व ने आ घेरा। ययाति के प्रार्थना करने पर शुक्राचार्यजी ने कहा :

''हे नहुषनन्दन ! तुम भक्तिभाव से मेरा चिंतन करके इच्छानुसार दूसरे के शरीर में अपनी वृद्धावस्था का संचार कर सकोगे। उस दशा में तुम्हें पाप भी नहीं लगेगा। जो पुत्र तुम्हें प्रसन्नतापूर्वक अपनी युवावस्था देगा वही राजा होगा, साथ ही दीर्घायु, यशस्वी तथा अनेक संतानों से युक्त होगा।''

तदनंतर ययाति के पुत्रों यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु तथा अनु ने तो अपनी युवावस्था देने से इन्कार कर दिया किन्तु सबसे छोटे पुत्र पुरु ने सहर्ष अपनी जवानी अपने पिता ययाति को प्रदान कर दी।

पुरु से यौवन लेकर ययाति ने उसे अपना बुढ़ापा दे दिया। वह जमाना था, जब संकल्प से लेन-देन होता था। युग के प्रभाव

> *कोई-कोई सत्पात्र महापुरुषों के वचन सुनकर इसी जन्म में सावधान हो जाते हैं, नहीं तो सुना हुआ उपदेश है... देर-सबेर ये संस्कार तो काम करेंगे ही। ज्ञानवान का सान्निध्य कभी व्यर्थ नहीं जाता है। सिंह की दाढ़ में आया हुआ शिकार क्वचित् छूट सकता है लेकिन ज्ञानी के हृदय में आया हुआ सत्शिष्य कभी कल्याण से वंचित् नहीं हो सकता।*

से एवं आदमी की योग्यता के प्रभाव से परिवर्तन होता रहता है। कभी-कभी शास्त्रों की कोई बात समझ में न आये तो उसे 'गप्प' मानकर बेवकूफी नहीं बढ़ाना चाहिए वरन् प्रयत्न करके अपनी बुद्धि बढ़ानी चाहिए एवं उसका रहस्य समझे हुए महापुरुषों को खोजना चाहिए। जो निर्विकल्प समाधि में पहुँच जाते हैं, वे बहुत दूर का देख सकते हैं। युग-युगान्तर, कल्प-कल्पान्तर की अलग-अलग कथाएँ ज्ञात हो सकती हैं। हजार, दो हजार, पचास हजार वर्ष पहले तो क्या पिछले युगों को भी देख सकते हैं।

अन्य इच्छाओं को निकालने के लिए 'ईश्वर को ही पाना है' यह इच्छा जगा लो। अछूट को पाने के लिए छूटनेवाले की आसक्ति मिटती है और जब छूटनेवाले की आसक्ति मिट जाती है तो फिर अछूट को पाना नहीं है वरन् अछूट तो अपना आत्मा है ही।

जैसे, कोई ड्राइवर हिन्दुस्तान में ही रहा है एवं अमेरिका के विषय में कुछ नहीं जानता उसे अगर कहा जाय कि 'हिन्दुस्तान में रोड़ की बायीं ओर गाड़ी चलाने का नियम है लेकिन अमेरिका में बायीं और गाड़ी चलाना उल्टा माना जाता है' तो वह कहेगा, 'ऐसा थोड़े-ही होता होगा !'

वीर्य की एक बूँद में ३००० जीव होते हैं, उनमें से कोई एकाध बलवान जीव गर्भ में टिक जाता है तो वही मनुष्य बनता है तथा वही राजा बनता है, सेठ या वकील आदि बनता है ऐसा विज्ञान कहता है किंतु स्थूल दृष्टि से यह देखना संभव नहीं है।

मन की दो धाराएँ हैं : एक तो इच्छापूर्ति की धारा एवं दूसरी जिज्ञासापूर्ति की धारा अथवा प्रेम की धारा। इच्छापूर्ति करते-करते, भोग भोगते-भोगते भी ययाति राजा की इच्छापूर्ति तो नहीं हुई वरन् इच्छा और बढ़ती ही गयी। फिर किसी पुण्य के प्रभाव से उन्हें लगा कि 'इच्छापूर्ति में तो बरबादी के सिवाय और कुछ नहीं है। भोगों को हम नहीं भोगते वरन् भोग ही हमें भोग लेते हैं।'

जिन्होंने इच्छानिवृत्ति को पा लिया है, जो इच्छानिवृत्ति तक पहुँच चुके हैं उन महापुरुष की उपासना करनेवाले तपी का तप सफल हो जाता है और योगी के लिए योग के द्वार खुल जाते हैं। ऐसे महापुरुष एक को नहीं वरन् हजारों-हजारों, लाखों-लाखों को देते हुए भी अपने-आपमें पूर्ण के पूर्ण रहते हैं। ऐसे महापुरुष ही इस पृथ्वी पर के वास्तविक देव हैं।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।

अतः राजा ययाति ने अपने पुत्र पुरु को उसका यौवन लौटाकर बुढ़ापा वापस ले लिया और तप करने वन की ओर चल पड़े। फिर तो ऐसा तप किया कि महाराज ! मृत्यु के पश्चात् उन्हें स्वर्ग ही नहीं अपितु इन्द्रासन पर बैठने का अधिकार भी मिल गया। ब्रह्मलोक तक के पुण्यात्माओं से मिलने अथवा वहाँ तक विचरण करने की भी उनकी योग्यता थी।

एक दिन इन्द्र ने राजा ययाति से पूछा : ''राजन् ! तुम संपूर्ण कर्मों को समाप्त करके घर छोड़कर वन में चले गये थे। अतः हे ययाति ! मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुम तपस्या में किसके समान हो ?''

तब ययाति ने कहा : ''हे इन्द्र ! मैं देवताओं, मनुष्यों, गन्धर्वों एवं महर्षियों में से किसी को भी तपस्या में अपनी बराबरी करनेवाला नहीं देखता हूँ।''

इस प्रकार ययाति ने अपनी शेखी बघारी। किन्तु आपकी बराबरी का जगत में कोई हो ही नहीं, यह संभव नहीं है। भले आप न जानें किन्तु इस धरती पर बहुत-से रत्न हैं।

ययाति को आत्मप्रशंसा करते एवं दूसरों को तुच्छ मानते देखकर इन्द्र ने रुष्ट होकर कहा : ''राजन् ! तुम्हारे पुण्य क्षीण हो गये। जब तुमने अपने से श्रेष्ठ पुरुषों का ही तिरस्कार कर दिया तो फिर तुम्हारा पुण्य भी कैसे बच सकता है ? अतः अब तुम्हें यहाँ

से गिराया जायेगा। किन्तु मैं इतनी रियायत जरूर कर सकता हूँ कि तुम्हारी इच्छा के अनुरूप स्थान में गिराया जाय।''

ययाति बोले : ''मुझे ऐसी जगह पर भेजा जाय, जहाँसे पुनः तुम्हारे समीप न आना पड़े। वासनापूर्ति की आग जहाँ शान्त हो जाय ऐसी जगह पर मुझे गिराया जाय।''

पूर्ण वासनाओं की निवृत्ति अथवा पूर्ण प्रेम की प्राप्ति का रास्ता बुद्धिमानों का रास्ता है, परम पद पानेवालों का रास्ता है, तीव्र पुण्यात्माओं का रास्ता है।

तब जहाँ अष्टक, प्रतर्दन, वसुमान और शिवि ये चारों इच्छानिवृत्ति की ऊँचाई को पाये हुए महापुरुष विद्यमान थे, वहीं ययाति गिरने लगे। ययाति को स्वर्ग से गिरते देखकर उत्तम धर्म के पालक अष्टक ने कहा :

''ठहरो... अगर इन्द्र ने तुम्हें स्वर्ग से गिरा दिया है तो हम अपने योगबल से पुनः तुम्हारे लिए वहीं व्यवस्था कर सकते हैं और तुम्हें पुनः स्वर्ग भेज सकते हैं। हम तुम पर प्रसन्न हैं।''

तब ययाति ने कहा : ''नहीं प्रभु ! मुझे आपके श्रीचरणों में ही आने दीजिए। मैंने पृथ्वी पर बहुत-से भोग भोगे एवं इन्द्र के साथ बैठकर भी देख लिया। इच्छापूर्ति करते-करते तो जिंदगी पूरी हो जाती है।''

फिर ययाति उन चार महापुरुषों के पास आये और जिज्ञासापूर्ति में लग गये कि 'मैं कौन हूँ ?'

पैसे तो बैंक में पड़े होते हैं किन्तु मनुष्य समझता है कि 'मेरे पास दस लाख रूपये हैं।' मकान धरती पर खड़े होते हैं किन्तु अहं में होता है कि 'मेरे तीन मकान हैं।' बेटे तो बाजार में होते हैं किन्तु मन में घुसा होता है कि 'मेरे तीन बेटे हैं।' वास्तव में बेटे तुम्हारे नहीं, सुख के हैं। जहाँ सुख मिल रहा है वहीं जा रहे हैं। जब मन ही तुम्हारा नहीं है, वह तुम्हें भटकाता रहता है तो बेटे, मकान, धन जो कि तुमसे बाहर हैं तुम्हारे कैसे हो सकते हैं ? 'मेरे बेटे..., मेरा मकान...' केवल मन की मान्यताएँ हैं। उनसे मान्यता के अनुसार थोड़ा व्यवहार कर लो लेकिन भीतर से समझ लो कि 'ईश्वर के सिवा तुम्हारा कोई नहीं है।'

तप से भोग मिल सकता है। एकाग्रता से ऐश्वर्य मिल सकता है लेकिन भोग और ऐश्वर्य दोनों नष्ट हो जाते हैं। जबकि जिज्ञासा से, प्रेम से परमात्मा मिलता है, आत्मस्वरूप का अनुभव होता है जिसका कभी नाश नहीं होता।

ईश्वर क्या है और कैसे मिलता है ? ईश्वर नित्य तत्त्व है और नित्य प्राप्त है लेकिन उसकी अनुभूति कैसे हो ? पत्नी पहले प्राप्त नहीं हुई थी और बाद में भी साथ में नहीं रहेगी, धन पहले नहीं था, बाद में भी नहीं रहेगा, पद और कुर्सी पहले नहीं थी, बाद में नहीं रहेगी, यह शरीर भी पहले नहीं था, बाद में नहीं रहेगा लेकिन परमात्मा तो नित्य है। वह पहले था, अभी है और बाद में भी रहेगा।

परमात्मा परम प्रेमास्पद है। सारी सृष्टि में जहाँ-जहाँ आनंद और खुशी दिखती है वह उस ब्रह्म के एक पाद की, एक हिस्से की महिमा है। उस ब्रह्म को पूरा जानो तो...

नानकजी ने कहा है :

पूरा प्रभु आराधिया पूरा जा का नाँव।
नानक पूरा पाइया पूरे के गुन गाव॥

पूरे प्रभु को जानो, पूरे प्रभु को आराधो। पूरे परमात्मा के एक हिस्से में प्रकृति है और प्रकृति के एक हिस्से में यह पूरी मानवता है। कई जगह आकाश है। कई जगह प्रकृति खाली पड़ी है। अतः उस पूरे प्रभु की ही आराधना करो। पूरे प्रभु के ही गुणगान करो और पूरे को पाकर पूर्ण हो जाओ।

उस पूर्ण परब्रह्म की प्राप्ति के रास्ते लगना एक बात है और इच्छा की पूर्ति के रास्ते लगना दूसरी बात। इच्छा की पूर्ति करते-करते एक जन्म नहीं, हजार जन्म नहीं, लाख जन्म नहीं चौरासी लाख जन्म बीत जायें फिर भी इच्छा की पूर्ति नहीं होती। इच्छा की जड़ें तब तक नहीं निकलतीं जब तक जिज्ञासा की पूर्ति की ओर मानव नहीं

चलता।

तप से भोग मिल सकता है। एकाग्रता से ऐश्वर्य मिल सकता है लेकिन भोग और ऐश्वर्य दोनों नष्ट हो जाते हैं । जबकि जिज्ञासा से, प्रेम से परमात्मा मिलता है, आत्मस्वरूप का अनुभव होता है जिसका कभी नाश नहीं होता।

वास्तव में बेटे तुम्हारे नहीं, सुख के हैं। जहाँ सुख मिल रहा है वहीं जा रहे हैं। जब मन ही तुम्हारा नहीं है, वह तुम्हें भटकाता रहता है तो बेटे, मकान, धन जो कि तुमसे बाहर हैं तुम्हारे कैसे हो सकते हैं?

जिज्ञासापूर्ति में अथवा प्रेम की पूर्ति में लगनेवाला आरंभ में तो एकदम सीधा-सादा लगता है किन्तु उसका फल बहुत मीठा होता है, शाश्वत होता है। जबकि इच्छापूर्ति में लगनेवाला आरंभ में इच्छापूर्ति के लिए कष्ट सहता है और इच्छापूर्ति होने पर थोड़ा हर्षित भी होता है लेकिन इच्छापूर्ति के बाद पूर्ण संतुष्ट नहीं होता वरन् वासनाएँ और अधिक बढ़ जाती हैं। इच्छापूर्ति में आदमी स्वतंत्र नहीं है। मान लो, किसीकी इच्छा है कि 'अमुक लड़की से शादी करूँ' लेकिन यह तभी संभव है जब वह लड़की भी चाहे, लड़की का बाप चाहे, लड़की के ग्रह अनुकूल हों और इस प्रकार शादी हो भी गयी तो भी यदि उस लड़की का स्वभाव मेल नहीं खाता तब भी गड़बड़। यदि स्वभाव मेल खाता है और संतति नहीं होती तब भी गड़बड़। अगर संतति हो गयी और वह पढ़ती-लिखती नहीं है तब भी गड़बड़। मान लो, बच्चे ठीक-ठीक पढ़ते भी हैं, आज्ञाकारी भी हैं किन्तु अंत में उन्हें छोड़कर जाना पड़ता है तब भी गड़बड़... अंत समय में 'उनका क्या होगा?' सोच-सोचकर जीव भटकता रहता है। अतः इच्छापूर्ति में पराधीनता है, जड़ता है और अंत में है वासनाओं का चक्र।

अगर एक इच्छापूर्ति हो भी जाती है तो दूसरी तुरंत उठ खड़ी होती है।

एक विनोदी काल्पनिक दृष्टांत है : एक व्यक्ति को नौकरी नहीं मिल रही थी, तब वह किसी सौदागर के पास गया और बोला : ''मुझे कोई काम-धंधा नहीं मिल रहा है।''

सौदागर : ''मैं टोले के टोले बैल खरीदता और बेचता हूँ। दिनभर तो तू भले आराम कर लेकिन रात को चौकी करना और चौकी की शर्त है कि जब तक सब बैल न बैठ जायें तब तक तुझे भी नहीं बैठना है। अगर सब बैल बैठ जायें तो तू भी बैठ सकता है।''

उस व्यक्ति ने सोचा यह तो बढ़िया काम है। उस समय बैल करीब पचास जितने होंगे। रात्रि हुई २० बैल बैठ गये तब वह सोचने लगा 'अभी तो तीस खड़े हैं, २० ही बैठे हैं।' थोड़ी देर में जो तीस खड़े थे उनमें से कुछ बैठे तो बाकी के बीस उठ खड़े हुए। थोड़ी देर बाद कुछ और बैल बैठ गये तथा कुछ गिने-गिनाये ही खड़े रहे। जब वे खड़े हुए बैल बैठने लगे तो पुनः बैठे हुए बैल खड़े हो गये। इस प्रकार सारी रात बीत गयी। प्रभात होने को थी किन्तु वह सारी रात बैठ नहीं पाया। दैवयोग से हवा ऐसी सुन्दर चली कि सारे के सारे बैल बैठ गये, केवल एक बछड़ा नहीं बैठा। तब उसने सोचा कि 'इस कमबख्त को जरा-सा दबाकर बैठा दूँ तो मुझे भी आराम मिल जाय' ऐसा सोचकर ज्यों ही उसने बछड़े को दबाकर बैठाना चाहा तो बाकी के सब बैल खड़े हो गये।

बस, यही हाल है वासनाओं का। एक वासना शांत हुई न हुई, दूसरी शांत हुई न हुई कि तीसरी उठ खड़ी होती है। तीसरी-चौथी वासना भी शांत हो गयी तो दस दूसरी उठ खड़ी होती हैं। उन दस वासनाओं को शांत करते-करते पुनः पहलेवाली वासनाएँ उठ खड़ी होती हैं। ऐसा करते-करते बुढ़ापा आ जाता है फिर भी वासनाओं का क्रम नहीं टूटता और जीव बेचारा ठगा-सा रह जाता है।

पूर्ण वासनाओं की निवृत्ति अथवा पूर्ण प्रेम की प्राप्ति का रास्ता बुद्धिमानों का रास्ता है, परम पद पानेवालों का रास्ता है, तीव्र पुण्यात्माओं का रास्ता है। जिनके स्वल्प पुण्य हैं उनको तो 'भगवान मेरा आत्मा है' इस पर विश्वास ही नहीं होता। संतों का सान्निध्य अमोघ है एवं शाश्वत् फल देने में सहायक

है इस बात पर स्वल्प पुण्यवालों को विश्वास ही नहीं होता है।

स्वल्प पुण्यवतां राजन् विश्वासो नैव जायते।

हे राजन् ! जिनके स्वल्प पुण्य होते हैं उनको तो विश्वास ही नहीं होता कि ऐसी भी कोई उपलब्धि है जिसे पाने के बाद कुछ पाना शेष नहीं रहता, जिसको जानने के बाद कुछ जानना शेष नहीं रहता और जिस सुख से बढ़कर कोई सुख नहीं है, जिस लाभ से बढ़कर कोई लाभ ही नहीं है। इन्द्रलोक तो क्या, ब्रह्मलोक में जाना भी उस ब्रह्मज्ञानी के लिए बहुत छोटी बात है, तुच्छ बात है।

तीन टूक कौपीन की भाजी बिना लूण।
तुलसी हृदय रघुवीर बसे तो इन्द्र बापड़ो कूण॥

पीत्वा ब्रह्मरसं योगिनो भूत्वा उन्मत्तः इन्द्रोऽपि रंकवत् भासयेत् अन्यस्य का वार्ता ?

इच्छानिवृत्ति में अर्थात् जिज्ञासा की पूर्ति में, सत्यस्वरूप ईश्वर की प्राप्ति में लगने के लिए बड़े पुण्यों की, बड़ी बुद्धिमानी की और बड़ी सावधानी की जरूरत है। जो अपने से भिन्न सत्ता का स्वीकार करते हैं और भिन्न की खोज चालू रखते हैं वे बलवान नहीं हो पाते। अपने से भिन्न जहाँसे 'मैं' उठता है उससे अलग अगर कोई ईश्वर या अलग सुख खोजता है तो दुर्बलता नहीं मिटती, जिज्ञासा की पूर्ति नहीं होती, परम प्रेम की प्राप्ति नहीं होती।

अगर जीव प्रेमास्पद को अपने से पृथक् मानेगा तो विरह की आग जलती रहेगी। आरंभ में विरह की आग ठीक है लेकिन उसमें अपूर्ति खटकती रहेगी... **कभी न छूटे पिण्ड दुःखों से जिसे ब्रह्म का ज्ञान नहीं।**

परम प्रेमास्पद वह परमात्मा हमसे दूर नहीं है, अप्राप्त नहीं है, कठिन नहीं है फिर भी कठिन लग रहा है क्योंकि इच्छापूर्ति को, दृश्यमान जगत को इतनी सत्यबुद्धि दे बैठे हैं कि जिससे यह दिखता है उसीको खो बैठे हैं। जिसकी सत्यता से यह जड़ माया सत्य जैसी भासित हो रही है, जिस परमात्मा की सत्ता से प्रकृति में इतना कार्य-व्यापार हो रहा है उसीको भूल बैठे हैं। जैसे, कटोरी में से पीतल निकाल दें तो कटोरी नहीं रह सकती, मटके में से मिट्टी निकाल दें तो मटका नहीं रह सकता, कपड़े में से सूत निकाल दें तो कपड़ा नहीं रह सकता और गहने में से स्वर्ण निकाल दें तो गहना नहीं रह सकता वैसे ही ब्रह्म निकाल दें तो प्रकृति नहीं रह सकती है।

इच्छा की पूर्ति करते-करते एक जन्म नहीं, हजार जन्म नहीं, लाख जन्म नहीं चौरासी लाख जन्म बीत जायें फिर भी इच्छा की पूर्ति नहीं होती। इच्छा की जड़ें तब तक नहीं निकलतीं जब तक जिज्ञासा की पूर्ति की ओर मानव नहीं चलता।

जैसे गहनों में सोना ओत-प्रोत है ऐसे ही संसार में परमात्मा ओत-प्रोत है। उसको जानने की जिज्ञासा में, उसके परम प्रेम को पाने की जिज्ञासा की पूर्ति में लगनेवाला व्यक्ति धन्य है किन्तु यह तभी संभव है जब इच्छानिवृत्ति की ओर कदम आगे बढ़ायें और इच्छानिवृत्ति के लिए जरूरी है कि अन्य इच्छाओं को त्यागकर केवल परमात्मा को पाने की इच्छा रखें। यहाँ कोई प्रश्न कर सकता है कि 'इच्छानिवृत्ति ही करना हो तो फिर परमात्मप्राप्ति की इच्छा भी क्यों करना ?' परम पद की प्राप्ति की, परमात्मप्राप्ति की इच्छा भी है तो इच्छा ही लेकिन सारी इच्छाओं को खा जानेवाली यह इच्छा है। जब वह सब इच्छाओं को खा डालती है तो फिर ईश्वर को पाने की इच्छा भी अपने-आप शांत हो जाती है। ईश्वर तो अपना-आपा है ही।

मेरे गुरुदेव कभी-कभी यह दृष्टांत देकर समझाया करते थे कि : ''देखो, किसीके कुएँ में खूब काई जम गयी थी, तब उसने कहा : 'महाराज ! मेरे कुएँ में तो खूब काई जम गयी है।'

महाराज : 'मछलियाँ डाल दो।'

मछलियाँ डालने से काई तो खत्म हो गयी किन्तु मछलियाँ बढ़ गयीं तब उसने कहा : 'अब मछलियाँ बहुत बढ़ गयी हैं जो पानी को दूषित करती हैं।'

महाराज : 'कछुआ डाल

दो।'

कछुआ डालने से मछलियाँ खत्म हो गयीं तो वह पुनः आया महाराज के पास और बोला : 'महाराज ! अब मछलियाँ भी खत्म हो गयी हैं किन्तु कछुआ भी तो गंदगी करता है।'

तब महाराज ने कहा : 'कछुआ भी निकाल दो।'

ऐसे ही अन्य इच्छाओं को निकालने के लिए 'ईश्वर को ही पाना है' यह इच्छा जगा लो। 'मिले तो परमात्म-प्रेम ही मिले... मिले तो परमात्मा ही मिले... मिले तो ऐसा मिले जो कि कभी न छूटे...' ऐसा करने से अछूट को पाने के लिए छूटनेवाले की आसक्ति मिटती है और जब छूटनेवाले की आसक्ति मिट जाती है तो फिर अछूट को पाना नहीं है वरन् अछूट तो अपना आत्मा है ही।

कभी-कभी शास्त्रों की कोई बात समझ में न आये तो उसे 'गप्प' मानकर बेवकूफी नहीं बढ़ाना चाहिए वरन् प्रयत्न करके अपनी बुद्धि बढ़ानी चाहिए एवं उसका रहस्य समझे हुए महापुरुषों को खोजना चाहिए।

तप से भोग मिलता है। योग से ऐश्वर्य मिलता है। भोगी भोग भोगकर दुःखी होता है और ऐश्वर्यवाला ऐश्वर्य से वियोग पाकर दुःखी होता है लेकिन जिन्होंने इच्छानिवृत्ति को पा लिया है, जो इच्छानिवृत्ति तक पहुँच चुके हैं उन महापुरुष की उपासना करनेवाले तपी का तप सफल हो जाता है और योगी के लिए योग के द्वार खुल जाते हैं। ऐसे महापुरुष एक को नहीं वरन् हजारों-हजारों, लाखों-लाखों को देते हुए भी अपने-आपमें पूर्ण के पूर्ण रहते हैं। ऐसे महापुरुष ही इस पृथ्वी पर के वास्तविक देव हैं।

वास्तविक देव की उपासना क्या है ? इस संदर्भ में एक बार वशिष्ठजी महाराज ने भगवान सांब सदाशिव से प्रश्न किया था, तब भगवान शिव ने कहा था : 'सहस्र नेत्रधारी इन्द्र भी वास्तव में देव नहीं है और चतुर्मुखी ब्रह्मा भी वास्तव में देव नहीं हैं। वास्तव में मैं भी देव नहीं हूँ और तुम भी वास्तव में देव नहीं हो अपितु तुम, मैं, ब्रह्माजी और इन्द्र जिससे देव माने जाते हैं वह आत्मा ही वास्तव में देव है। उस आत्मदेव में तेरह निमेष विश्रान्ति पाने से जगतदान का फल मिलता है। सत्रह निमेष विश्रांति पाने से अश्वमेध यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है और एक घड़ी (२२.५ मिनट) विश्रांति पाने से राजसूय यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है।

उस देव की पूजा-अर्चना के लिए धूप-दीप-अगरबत्ती, चंदन या बिलिपत्र की जरूरत नहीं है वरन् वह तो अपना आत्मस्वरूप है। उसमें जरूरत है शुद्ध बुद्धि की। उस देव की उपासना में तीन बिलिपत्र चढ़ाने से तात्पर्य है कि 'तीनों गुणों को जो सत्ता देता है उसे नमस्कार है।' पंचामृत स्नान का तात्पर्य 'पाँच भूतों में अमृत तत्त्व तू ही है' - यह भाव लिया जाना चाहिए। सुख-दुःख में सम रहना यह उस देव के आगे दीप दिखाना है और सदा अपने चित्त को चैतन्य की प्रसन्नता से, परम प्रेम की प्रसन्नता से महकता रखना यह उस देव की धूप-अगरबत्ती से पूजा है।

उस देव की इस प्रकार की उपासना करने से प्राणी शीघ्र ही परम प्रेम को, परम ज्ञान को, परम जीवन को और परम आनंद को पाता है जहाँसे फिर उसे गिरना नहीं पड़ता है।

ययाति का तो पुनरागमन हुआ क्योंकि वे इच्छापूर्ति के रास्ते थे, किन्तु जब वे इच्छापूर्ति का रास्ता छोड़कर प्रेमास्पद की प्राप्ति के रास्ते पर चले, शिवि, प्रतर्दन, अष्टक और वसुमान- इन चार ब्रह्मवेत्ताओं के चरणों में पहुँचे तब जीवन की पूर्णता का अनुभव कर पाये।

प्रतिकूलता का भय एवं अनुकूलता की इच्छा आत्मशक्ति को कुंठित कर देती है। अपने पर प्रतिकूल एवं अनुकूल परिस्थिति का प्रभाव न पड़ने देना यह जिज्ञासापूर्ति में मदद करता है, स्वस्वामित्व जगाने में मदद करता है, परम प्रेम की प्राप्ति में मदद करता है।

सुख सपना दुःख बुलबुला दोनों है मेहमान।
दोनों बीतन दीजिए सोऽहं को पहचान॥

हम क्या करते हैं ? अनुकूलता की प्राप्ति एवं

(शेष पृष्ठ २३ पर)

अहंकार के दोष

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

श्रीराम-वशिष्ठ संवाद

श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं :

''हे मुनिश्रेष्ठ ! यह अनेक रूपवाला संसार दीनों से भी दीन, विषयलम्पट लोगों को अहंकार के वशीभूत होने के कारण ही निरंतर राग-द्वेष आदि दोषों के कोषरूप अनर्थ की प्राप्ति कराता रहता है। अहंकार के वश में होने से ही मनुष्य पर आपत्ति आती है तथा उसे शारीरिक कष्ट भोगने पड़ते हैं। अहंकार से ही अनेक दुःखद मानसिक व्यथाएँ होती हैं तथा अहंकार से ही दुश्चेष्टाएँ होती हैं।

ब्रह्मन् ! यदि अहंकार रहता है तो आपत्तिकाल में मुझे दुःख होता है और यदि नहीं रहता है तो मैं निरंतर सुख का अनुभव करता हूँ। इसलिए अहंकाररहित होना ही श्रेष्ठ है।

मुने ! जैसे शत्रु किसीको मारने के लिए मंत्र-तंत्र के द्वारा मारण-उच्चाटन आदि का जाल फैलाता है उसी प्रकार इस अहंकाररूपी महान् शत्रु ने संसार में जीव का पतन करने के लिए बिना मंत्र-तंत्र के ही स्त्री, पुत्र, मित्र आदि के जाल फैला रखे हैं।

इस अहंकार का जड़मूल से निराकरण कर देने पर सभी मानसिक दुश्चिंताएँ तुरंत अपने-आप विलीन हो जाती हैं। अहंकाररूपी बादल के फट जाने पर शांति का विनाश करनेवाला एवं हृदयाकाश में छाया हुआ महान् मोहरूपी कुहासा धीरे-धीरे न जाने कहाँ विलीन हो जाता है।

महानुभाव मुनीश्वर ! जो सम्पूर्ण आपत्तियों का घर, शान्ति आदि उत्तम गुणों से रहित तथा हृदय के भीतर निवास करनेवाला है उस अनित्य अहंकार का मैं आश्रय नहीं लेना चाहता।''

श्री वशिष्ठजी ने कहा :

''हे रघुनंदन ! अहंभावना ही दुःख नामक सेमर के वृक्ष का मुख्य बीज है। उस अहंभावना के समान ही 'यह मेरा है' - ऐसी बुद्धि भी उक्त वृक्ष का आदि कारण है क्योंकि वही रागादिरूपिणी शाखाओं के विस्तार का कारण है। पहले बीजरूपिणी अहंभावना होती है, फिर वृक्षरूपिणी ममभावना होती है। तत्पश्चात् शाखारूपिणी इच्छा (राग) की प्रवृत्ति होती है। यह इच्छा ही इदंपदार्थ के रूप में सैकड़ों अनर्थों को उत्पन्न करनेवाली तथा संसार-भ्रम का धारण-पोषण करनेवाली है।''

इस अहंकार ने ही ममता को जन्म दिया है। रामायण में ठीक ही कहा है :

मैं अरू मोर तोर की माया।
बस कर दीन्ही जीवन काया ॥

अहंता और ममता ही सब दुःखों का मूल है। इसको हटाने का सरल उपाय है कि यदि कोई कह दे कि 'आप फलाने हो... आप फलाने हो...' उस समय स्मृति रखो कि 'यह सब झूठ... मैं तेरा... तू मेरा...।' कोई कह दे कि 'आप तो बड़े साहब हैं, आप तो बड़े सेठ हैं' तो सोचो कि यह सब झूठ है, यह सब कच्चा है। 'मैं तेरा हूँ... तू मेरा है...' यह सच्चा है, यह पक्का है। अगर आपका मन कहे तब भी यही स्मरण रखो कि 'मैं तेरा हूँ... तू मेरा है... बाह्य आडंबर, वाहवाही वगैरह सब कच्चा है। मैं आत्मा हूँ। मैं परमात्मा का हूँ। मेरा और परमात्मा का संबंध ही शाश्वत है तथा बाकी सब संबंध नश्वर हैं।'

(शेष पृष्ठ १८ पर)

सच्चा पुरुषार्थ

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

कई बार प्रयत्न करने पर भी असफलता मिले, फिर भी अपना पुरुषार्थ न छोड़े ऐसा कृतनिश्चयी साधक जीवन में अवश्य सफलता पाता है।

साधक के जीवन में कभी ऐसा भी अवसर आता है कि उसे अपने चारों ओर निराशा का गहन अंधकार छाया हुआ दिखाई देता है। अपने दिल की बात कहकर अपना दिल खाली कर सके ऐसा मौका नहीं मिलता है। फिर भी यदि उसका पुरुषार्थ शुभ के लिए होता है तो प्रकृति की कोई घटना उसके जीवन में पुनः आशा एवं उत्साह का संचार कर देती है।

> *वह पद है आत्मपद जिसे पाकर मानव सदा के लिए सब दुःखों से निवृत्त हो जाता है, जन्म-मरण के चक्र से सदा के लिए पार हो जाता है और दुनिया का बड़े-से-बड़ा कष्ट, दुनिया का बड़े-से-बड़ा विरोध भी उसे कोई हानि नहीं पहुँचा सकता है।*

सिद्धार्थ के जीवन में भी एक बार ऐसा प्रसंग आया था। ईश्वरप्राप्ति के लिए सिद्धार्थ ने पत्नी-पुत्र, राज-पाट तक का त्याग करके जंगल का रास्ता पकड़ा था। कई प्रकार की साधनाएँ की थीं, किन्तु लक्ष्य हासिल नहीं हो रहा था। सिद्धार्थ निराश होकर सोच ही रहे थे कि 'इससे तो अच्छा है कि घर चला जाऊँ...' इतने में एकाएक उनकी निगाह पेड़ पर चढ़ते हुए एक नन्हें-से कीड़े पर पड़ी। उन्होंने देखा कि पेड़ पर चढ़ता हुआ कीड़ा वायु के झोंके से नीचे गिर पड़ा। वह फिर से चढ़ने लगा तो फिर गिर पड़ा... ऐसा करते-करते वह दस बार चढ़ा और गिरा किन्तु फिर भी उसने प्रयत्न नहीं छोड़ा और आखिरकार ग्यारहवीं बार चढ़ ही गया।

यह दृश्य देखकर सिद्धार्थ को लगा कि 'यह मात्र एक सामान्य दृश्य ही नहीं वरन् मेरे लिए एक ईश्वरीय संकेत है। एक छोटा-सा कीड़ा दस-दस बार प्रयत्न करने पर भी नहीं हारता है और सफलता प्राप्त करके ही दम लेता है तो मैं क्यों अपना लक्ष्य छोड़कर कायरों की नाईं भागकर नश्वर राज्य सँभालूँ ?'

सिद्धार्थ पुनः दृढ़ता से लग गये तो लक्ष्य को पाकर ही रहे। वे ही सिद्धार्थ आज भी गौतम बुद्ध के नाम से लाखों-करोड़ों हृदयों द्वारा पूजे जा रहे हैं।

यदि तुम्हारा पुरुषार्थ शास्त्र-सम्मत हो, सद्गुरु द्वारा अनुमोदित हो, लक्ष्य के अनुरूप हो तो सफलता अवश्य मिलती है। पुरुषार्थ तो कई लोग करते हैं।

सुनी है एक कहानी एक बार चूहों की सभा हुई। चूहों के आगेवान ने कहा : ''पुरुषार्थ ही परम दैव है। पुरुषार्थ से ही सफलताएँ मिलती हैं। अतः अब हमें निराश होने की कोई जरूरत नहीं है। जाओ, तुम सब पुरुषार्थ करके कुछ ले आओ। कोई भी खाली हाथ न आये।''

सब चूहे सहमत हो गये और दौड़ पड़े। एक चूहा मदारी के घर में घुस गया और एक बाँस की पिटारी को कुतरना आरंभ किया। वह बाँस की पिटारी इतनी सख्त थी कि कुतरते-कुतरते चूहे के मुँह से खून बह निकला, फिर भी उसने पुरुषार्थ नहीं छोड़ा। प्रभात होने तक बड़ी मुश्किल से एक छेद कर पाया। जैसे ही चूहा पिटारी में घुसा तो रातभर के भूखे सर्प ने उस चूहे को अपना ग्रास बना लिया।

ठीक इसी तरह मूर्ख, अज्ञानी मनुष्य भी सारा जीवन नश्वर वस्तुओं को पाने के पुरुषार्थ में लगा देते हैं। किंतु अंत में क्या होता है ? कालरूपी सर्प आकर चूहेरूपी जीव को निगल जाता है। ऐसे पुरुषार्थ से क्या लाभ ?

शास्त्र कहता है : पुरुषार्थ अर्थात् **पुरुषस्य**

अर्थः **इति पुरुषार्थ** । परम पुरुष परब्रह्म परमात्मा के लिए जो यत्न किया जाता है वही पुरुषार्थ है। फिर चाहे जप-तप करो, चाहे कमाओ-खाओ और चाहे बच्चों की परवरिश करो... यह सब करते हुए भी तुम्हारा लक्ष्य, तुम्हारा ध्यान यदि अखंड चैतन्य की ओर है तो समझो कि पुरुषार्थ सही है। किन्तु यदि अखंड को भूलकर तुम खंड-खंड में, अलग-अलग दिखनेवाले शरीरों में उलझ जाते हो तो समझो कि तुम्हारा पुरुषार्थ करना व्यर्थ है।

एक छोटा-सा कीड़ा दस-दस बार प्रयत्न करने पर भी नहीं हारता है और सफलता प्राप्त करके ही दम लेता है तो मैं क्यों अपना लक्ष्य छोड़कर कायरों की नाईं भागकर नश्वर राज्य सँभालूँ ?

पुरुषार्थ तो सभी कर रहे हैं। आज तक हम सभी पुरुषार्थ करते ही आये हैं। ईश्वर ने हमको बुद्धिशक्ति दी है किन्तु उसका उपयोग हमने जगत के संबंधों को बढ़ाने में किया। ईश्वर ने हमें संकल्पशक्ति दी है किन्तु उसका उपयोग हमने जगत के व्यर्थ संकल्पों-विकल्पों को बढ़ाने में किया। ईश्वर ने हमें क्रियाशक्ति दी है किन्तु उसका उपयोग भी हमने जगत की नश्वर वस्तुओं को पाने में ही किया है।

किसीसे पूछो कि 'ऐसे पुरुषार्थ से क्या पाया ?' तो वह कहेगा : 'मैंने पुरुषार्थ किया। परीक्षा के दिनों में सुबह चार बजे उठकर पढ़ता था। मैं बी. ए. हो गया... मैं एम. ए. हो गया... बढ़िया नौकरी मिल गयी। फिर नौकरी छोड़कर चुनाव लड़ा तो उसमें भी सफल हो गया और आज एक साधारण परिवार का लड़का पुरुषार्थ करके मंत्री बन गया...'

फिर आप पूछो कि 'भाई ! अब आप सुखी तो हो ?' तो जवाब मिलेगा कि 'और सब तो ठीक है लेकिन लड़का कहने में नहीं चलता है तो फिक्र होती है... रात को नींद नहीं आती है...'

यह क्या पुरुषार्थ का वास्तविक फल है ? बी. ए. एम. ए. करने की, पीएच. डी. करने की, चुनाव लड़ने की मनाही नहीं है किन्तु यह सब करने के साथ आप एक ऐसे पद को पाने का भी पुरुषार्थ कर लो कि जिसे पाकर यदि आपकी सब धारणाएँ, सब मान्यताएँ विपरीत हो जाएँ, सारी खुदाई तुम्हारे विरोध में खड़ी हो जाय, फिर भी आपके दिल का चैन न लूटा जा सके, आपका आनंद रत्तीभर भी कम न हो सके। ...और वह पद है आत्मपद जिसे पाकर मानव सदा के लिए सब दुःखों से निवृत्त हो जाता है, जन्म-मरण के चक्र से सदा के लिए पार हो जाता है और दुनिया का बड़े-से-बड़ा कष्ट, दुनिया का बड़े-से-बड़ा विरोध भी उसे कोई हानि नहीं पहुँचा सकता है।

आप आनंद पाने के लिए साज तो बजाते हो, गीत भी गाते हो लेकिन गीत परमात्मा के लिए गा रहे हो कि संसार के लिए इस बात का जरा ख्याल रखना। परमात्मा के लिए किया गया हर कार्य पुरुषार्थ हो सकता है किन्तु सांसारिक इच्छा को लेकर की गयी परमात्मा की पूजा भी वास्तविक पुरुषार्थ नहीं हो सकती है।

बेटे-बेटी को जन्म देना, पाल-पोसकर बड़ा करना, पढ़ाना-लिखाना एवं अपने पैरों पर खड़ा कर देना... बस, केवल यही पुरुषार्थ नहीं है। इतना तो चूहा, बिल्ली आदि प्राणी भी कर लेते हैं। किन्तु बेटे-बेटी को उत्तम संस्कार देकर परमात्मा के मार्ग पर अग्रसर करना और खुद भी अग्रसर होना- यही सच्चा पुरुषार्थ है।

वेदान्त की नजर से, शास्त्रों की नजर से देखा जाय तो पुरुषार्थ का वास्तविक फल यही है कि पूरी त्रिलोकी का राज्य तुम्हें मिल जाय फिर भी तुम्हारे चित्त में हर्ष न हो और पड़ोसी तुम्हें नमक की एक डली तक देने के लिए तैयार न हो इतने तुम समाज में ठुकराये जाओ, फिर भी तुम्हारे चित्त में विषाद न हो ऐसे एकरस आत्मानंद में तुम्हारा चित्त लीन रहे... यही सच्चा पुरुषार्थ है। भोलेबाबा कहते हैं :

देहादि करते कार्य हैं, आत्मा सदा निर्लेप है।
यह ज्ञान सम्यक होय जब, होता न फिर विक्षेप है॥
मन इन्द्रियाँ करती रहें, अपना न कुछ भी स्वार्थ है।
जो आ गया सो कर लिया, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

(शेष पृष्ठ २३ पर)
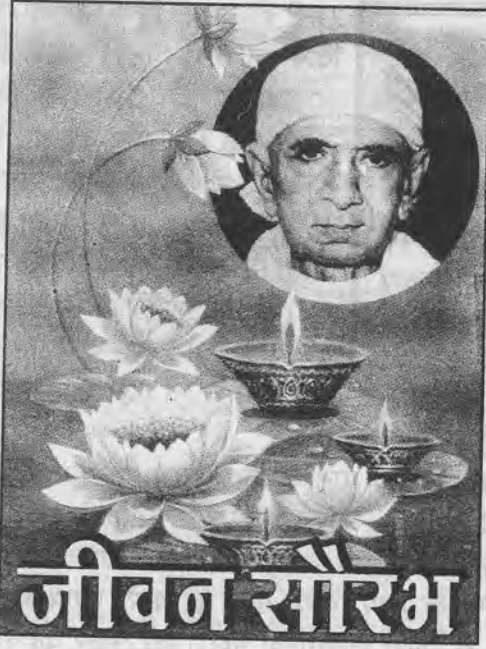
योगसिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री

लीलाशाहजी महाराज : एक दिव्य विभूति

(गतांक का शेष)

फिर जंगलों में भटकते-भटकते भर्तृहरि ने गुरु गोरखनाथ के चरणों में निवेदन किया :

''हे नाथ ! मैंने सोने की थाली में भोजन करके देख लिया और चाँदी के रथ में घूमकर भी देख लिया। यह सब करने में मैंने अपनी आयुष्य को बरबाद कर दिया। अब मैं यह अच्छी तरह जान चुका हूँ कि ये भोग तो बल, तेज, तंदुरुस्ती और आयुष्य का नाश कर डालते हैं। मनुष्य की वास्तविक उन्नति भोग-पूर्ति में नहीं वरन् योग में है। इसलिए आप मुझ पर प्रसन्न होकर योगदीक्षा देने की कृपा करिये।''

राजा भर्तृहरि की उत्कट इच्छा एवं वैराग्य को देखकर गोरखनाथ ने उन्हें दीक्षा दी एवं तीर्थाटन की आज्ञा दी।

तीर्थाटन करते-करते, साधना करते-करते भर्तृहरि ने आत्मानुभव पा लिया। उसके बाद कलम उठाकर उन्होंने सौ-सौ श्लोक की तीन छोटी-छोटी पुस्तकें लिखीं : वैराग्यशतक, नीतिशतक एवं शृंगारशतक। ये आज विश्व-साहित्य के अनमोल रत्न हैं।

इस प्रकार जिसके पूर्वजन्मों के संस्कार अथवा पुण्य जगे हों तब कोई वचन, कथा अथवा घटना उसके हृदय को छू जाती है और उसके जीवन में विवेक-वैराग्य जाग उठता है, उसके जीवन में महान् परिवर्तन आ जाता है।

रोगी, वृद्ध एवं मृत व्यक्ति को देखकर सिद्धार्थ का वैराग्य जाग उठा, पिंगला के विश्वासघात को देखकर भर्तृहरि का विवेक जाग उठा और उन लोगों ने अपने विशाल साम्राज्य को ठोकर मार दी। इसी प्रकार खाली गोदाम को भरनेवाले परम पिता परमात्मा की करुणा-कृपा को देखकर लीलाराम ने स्नेहमयी चाची के प्रेम एवं गुरुगद्दी का भी त्याग कर दिया एवं परमात्मतत्त्व की खोज में निकल पड़े...

वे टंडोमुहम्मदखान में आकर अपने बहनोई के भाई आसनदास के साथ रहने लगे। वहाँ उन्होंने नारायणदास के मंदिर में हिंदी सीखना शुरू किया। हिंदी का ज्ञान प्राप्त करने के बाद लीलाराम ने वेदांत-ग्रंथों का अभ्यास शुरू किया।

गाँव के छोर पर संत हंस निर्वाण का आश्रम था। जोधपुर के एक बड़े विद्वान और ज्ञानी महापुरुष स्वामी परमानंदजी उसमें रहते थे। लीलाराम के ऊपर उनकी मीठी कृपादृष्टि पड़ी। लीलाराम के उत्साह एवं तत्परता को देखकर वे उन्हें वेदान्त पढ़ाने में ज्यादा दिलचस्पी लेने लगे। इस प्रकार लीलाराम एक ओर सांसारिक एवं अध्यात्मिक विद्या में तीव्र प्रगति कर रहे थे तो दूसरी ओर उनकी त्याग एवं वैराग्यवृत्ति भी खूब प्रबल होती जा रही थी।

यह देखकर उनके बहनोई एवं सगे-संबंधियों को चिंता होने लगी। इधर उनकी चाची भी इन लोगों को संदेश भेजतीं कि लीलाराम की शादी करवा देना। वह साधु न बन जाय- इसका विशेष ध्यान रखना। इस कारण उनके बहनोई एवं सगे-संबंधी उन्हें बार-बार संसार की तरफ खींचने का प्रयत्न करने लगे। एक सुंदर लड़की भी बतायी गयी परंतु जिसे ईश्वर से मिलने की लगन लगी हो वह भला, किस प्रकार

संसार-बंधन में फँस सकता है ?

चातक मीन पतंग जब पिया बिन नहीं रह पाये ।
साध्य को पाये बिना साधक क्यों रह जाये ?

छत्रपति शिवाजी के गुरु समर्थ रामदास के विवाह के समय की बात है। उनके सगे-संबंधियों ने जबरदस्ती उन्हें विवाह-मंडप में बैठा दिया और सभी ब्राह्मणों ने मंगलाष्टक बोलना प्रारंभ किया। सभी ब्राह्मणों ने जब एक साथ 'सावधान' शब्द का उच्चारण किया तब समर्थ ने मन में कहा :

''मैं सदा सावधान रहता हूँ। फिर भी ये लोग मुझे सावधान रहने को कह रहे हैं इसलिए इसमें अवश्य कोई भेद होना चाहिए माताश्री की आज्ञा अंतरपट पकड़ने तक की ही थी, वह भी पूरी हो गयी है और मैं अपना बचन पाल चुका हूँ तो फिर अब मैं यहाँ क्यों बैठा हूँ ? अब तो मुझे सचमुच सावधान हो जाना चाहिए।''

मन में ऐसा विचारकर समर्थ विवाह-मंडप में से एकदम उठकर भाग गये।

इसी प्रकार लीलाराम ने जब देखा कि उनके संबंधी उन्हें दुनिया के नश्वर बंधन में बाँधना चाहते हैं तब उन्होंने अपने बहनोई के आगे स्पष्ट शब्दों में कह दिया :

''मैं पूरी जिंदगी ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करूँगा एवं संन्यासी बनकर ही रहूँगा।''

बाद में जब यही लीलाराम पूज्य संत श्री लीलाशाहजी महाराज के रूप में विख्यात हुए तब वे ही सगे-संबंधी, मित्र वगैरह पगड़ी उतारकर, पैर पड़कर उनसे माफी माँगने लगे कि :

''हमने तुम्हारा खूब अपमान किया था। हम तुम्हें गलत रास्ते पर ले जाने के लिए परेशान करते थे, हमें माफ करो। हमने बूढ़े होकर भी पूरा जीवन बरबाद कर डाला किन्तु कुछ भी हाथ न लगा। हमने अपनी जिंदगी भी संसार में व्यर्थ बिता डाली। तुम्हारा मार्ग ही सच्चा था।''

अंत में लीलाराम का वैराग्य सीमा लाँघ गया। उन्होंने लोकलाज छोड़कर संसारियों का साधारण वेश उतार दिया एवं पाँच-छः आनेवाला खादी का कपड़ा लेकर, उसमें से चोगा बनवाकर, उसे पहनकर संन्यास ग्रहण कर लिया। उस समय लीलाराम की उम्र मात्र १२ वर्ष की थी।

फिर लीलाराम टंडोमुहम्मदखान छोड़कर टंडोजानमुहम्मदखान में आ गये। यहीं वेदान्ती, ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मश्रोत्रिय संत श्री केशवानंदजी रहते थे। सिंध के कई जिज्ञासु ज्ञान पाने के लिए उनके पास आते थे।

लीलाराम जब छोटे थे, तब टंडेबाग में श्री केशवानंदजी के दर्शन करके खूब प्रभावित हुए थे। अतः अपनी अध्यात्मिक भूख मिटाने के लिए सद्गुरुदेव श्री केशवानंदजी के श्रीचरणों में लीलाराम खूब श्रद्धापूर्वक समर्पित हो गये। लीलाराम के श्रद्धा एवं प्रेम को देखकर संत केशवानंदजी ने उनके मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते हुए पूछा :

''यह चोगा तुझे किसने पहनाया है ? संत का वेश पहनने मात्र से कोई संत नहीं बन जाता वरन् जिसके जन्म-मरण का अंत हो जाता है उन्हें ही संत कहा जाता है।''

लीलाराम ने तुरंत नम्रतापूर्वक जवाब दिया :

''साँई ! किसीने यह चोगा (अंगरखा) पहनाया नहीं है। मेरा दिल संसार से विरक्त हो गया है। दिल दातार को बेच दिया है। मैं ब्रह्मचर्यव्रत को धारण करके स्वयं ही यह चोगा बनाकर, पहनकर आपकी शरण में आया हूँ। मैं आपका बालक हूँ। आपकी दया-कृपा से मुझे ईश्वरप्राप्ति करनी है।''

तब संत केशवानंद ने कहा :

''बेटा ! चोगा पहनने अथवा भगवा कपड़ा रंगने से कोई संत या संन्यासी नहीं बन जाता है। सत्य को, ईश्वर को प्राप्त करने के लिए तो तपस्या की जरूरत है, सेवा करने की जरूरत है। यहाँ तो अपनेको, अपने अहं को मिटाने की जरूरत है। अपने अंतर में से विषय-वासनाओं को निकालने की जरूरत है।''

लीलाराम ने हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक कहा :

''यह सेवक आपकी प्रत्येक आज्ञा का पालन

करने के लिए तैयार है। मुझे संसार के किसी भी सुख को भोगने की इच्छा नहीं है। मैं समस्त संबंधों का त्याग करके आपकी शरण में आया हूँ।''

ऐसे जवाब से संतुष्ट होकर संत श्री केशवानंदजी ने खुशी से लीलाराम को अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया।

सद्गुरु की महिमा अवर्णनीय है। सद्गुरु-महिमा का वर्णन करते हुए कबीरजी ने कहा है :

सात समंदर की मसि करौं, लेखनी सब वनराई।
धरती सब कागद करौं, गुरु गुन लिखा न जाई ॥

'सातों महासागरों की स्याही बना दी जाय, पृथ्वी के सभी वनों की लेखनी (कलम) बना दी जाय और संपूर्ण पृथ्वी को कागज बना दिया जाय फिर भी गुरु के गुणगान नहीं लिखे जा सकते।'

गुरु-महिमा को अनेक ऋषि-मुनियों ने गाया है, गा रहे हैं और गाते ही रहेंगे, फिर भी उनकी महिमा का कोई अंत नहीं है, कोई पार नहीं है। स्वयं भगवान ने भी गुरुओं की महिमा का गान किया है। भगवान श्रीराम एवं श्रीकृष्ण भी जब मनुष्य रूप धारण करके पृथ्वी पर अवतरित हुए तब वे भी आत्मतत्त्व का ज्ञान पाने के लिए वशिष्ठ मुनि एवं सांदीपनि मुनि जैसे आत्मानुभव से तृप्त गुरुओं के द्वार पर गये थे। अष्टावक्र मुनि की सहज अवस्था के स्फुरित जीवन्मुक्ति देनेवाले अमृतोपदेश से राजा जनक को घोड़े के रकाब में पैर डालते-डालते ज्ञान हो गया। अष्टावक्र मुनि पूर्णता को प्राप्त ब्रह्मवेत्ता महापुरुष थे और जनक पूर्ण तैयार पात्र।

ऐसे जीवन्मुक्त, ब्रह्मज्ञानी सद्गुरुओं की महिमा जितनी गायें उतनी ही कम है। ऐसे पवित्र महापुरुषों की अनुकंपा एवं उनके पुण्य-प्रताप से यह धरा सदैव पावन होती रही है। श्रीगुरुगीता में भगवान शिव ने सद्गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए माता पार्वती से कहा है :

बहुजन्मकृतात् पुण्याल्लभ्यतेऽसौ महागुरुः।
लब्ध्वाऽमुं न पुनर्याति शिष्यः संसारबन्धनम् ॥

'अनेक जन्मों में किये हुए पुण्यों से ऐसे महागुरु प्राप्त होते हैं। उनको प्राप्त करके शिष्य पुनः संसारबंधन में नहीं बँधता अर्थात् मुक्त हो जाता है।'

ऐसे आत्मानुभव से तृप्त महापुरुषों की गाथा दिव्य है। ऐसे महापुरुष अगर किसी सत्पात्र शिष्य को मिल जायें तो...

लीलाराम भी दृढ़ता एवं तत्परता से गुरुद्वार पर रहकर तन-मन से गुरुसेवा में संलग्न हो गये।

उपनिषदों में भी आया है कि आत्मज्ञान के मुमुक्षु संसार को छोड़कर, गुरु के चरणों का सेवन करते हुए वर्षों तक सेवा एवं साधनारूपी कठिन तपस्या करके सत्य का अनुभव प्राप्त करते हैं। लीलाराम भी निष्ठापूर्वक रात-दिन गुरुसेवा एवं साधना में अपनेको रत रखने लगे। वे सुबह जल्दी उठकर आश्रम की सफाई करते, पानी भरते, भोजन बनाकर गुरु को खिलाते, गायों के लिए घास काटते, गायों की सब सेवा करते, आश्रम में जो अतिथि आते उन्हें भोजन बनाकर खिलाते, साधु-संतों की देखभाल करते, आधी रात तक गुरुदेव की चरणचंपी करते।

लीलाराम की दृढ़ता एवं तत्परता देखकर गुरु उन्हें सच्चे रंग में रंगने लगे। लीलाराम भी गुरु के साथ खूब मर्यादा रखते। खूब कम एवं मर्यादित बोलते थे। वे अपना समय सदैव जप, ध्यान, सत्संग, सत्शास्त्रों के अध्ययन, ईश्वर-चिंतन एवं आश्रम की विविध प्रकार की सेवा में गुजारते थे।

खाली दिमाग शैतान का घर होता है। खाली मन गपशप में लगता है अथवा आवारा मन इधर-उधर की बातें करता है। लीलाराम कभी ऐसा नहीं करते थे। केवल दिखाने के लिए ही उनका साधक या शिष्य जैसा व्यवहार नहीं था वरन् वे तो सच्चे सत्शिष्य थे।

उनका कद छोटा एवं देह का रंग श्याम था। दिखने में भोले-भाले लगते किन्तु व्यक्तित्व आकर्षक था। वाणी पर उनका बड़ा संयम था। वे आश्रम में सभी गुरुभाइयों के साथ विनम्र एवं प्रेमपूर्ण व्यवहार रखते थे। (क्रमशः)

तीन प्रकार की विद्याएँ

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

तीन प्रकार की विद्याएँ होती हैं :

१. लौकिक विद्या : जिसे हम स्कूल-कॉलेजों में पढ़ते हैं । यह विद्या केवल पेट भरने की विद्या है ।

२. योगविद्या : इस लोक और परलोक के रहस्यों को जानने की विद्या ।

३. आत्मविद्या : आत्मा-परमात्मा की विद्या, परमात्मा के साक्षात्कार की विद्या, परमात्मा के साथ एकता की विद्या ।

लौकिक विद्या शारीरिक सुविधा के उपयोग में आती है । योगविद्या से इस लोक एवं परलोक के रहस्य खुलने लगते हैं एवं आत्मविद्या से परमात्मा के साथ एकता हो जाती है । जीवन में इन तीनों विद्याओं की प्राप्ति होनी चाहिए । लौकिक विद्या पा ली और योगविद्या नहीं है तो जीवन में लौकिक चीजें बहुत मिलेंगी लेकिन भीतर शांति नहीं होगी । भीतर अशांति होगी, दुराचार होगा । लौकिक विद्या को पाकर थोड़ा कुछ सीख लिया, यहाँ तक कि बम बनाना सीख गये, फिर भी हृदय में अशांति की आग जलती रहेगी । अतः लौकिक विद्या के साथ आत्मविद्या अत्यावश्यक है ।

जो लोग योगविद्या एवं आत्मविद्या का अभ्यास करते हैं, सुबह के समय थोड़ा योग का अभ्यास करते हैं वे लोग लौकिक विद्या में भी शीघ्रता से सफल होते हैं । योगविद्या एवं ब्रह्मविद्या का थोड़ा-सा अभ्यास करें तो लौकिक विद्या उनको आसानी से प्राप्त हो जाती है । लौकिक विद्या के अच्छे-अच्छे रहस्य वे लोग खोज सकते हैं ।

जो वैज्ञानिक हैं वे भी जाने-अनजाने थोड़ा-सा योगविद्या की शरण जाते हैं । रिसर्च करते-करते एकाग्र हो जाते हैं, तन्मय हो जाते हैं तभी कोई रहस्य उनके हाथ लगता है । वे ही वैज्ञानिक अगर योगी होकर रिसर्च करें तो... योगियों ने तो ऐसे-ऐसे रिसर्च कर रखे हैं जिनका बयान करना भी आज के आदमी के बस की बात नहीं है ।

नाभि केन्द्र पर ध्यान केन्द्रित किया जाय तो शरीर की संरचना ज्यों-की-त्यों दिखती है । योगियों ने काट-कूटकर (ऑपरेशन करके) नहीं देखा वरन् उन्होंने स्थूल भौतिक शरीर को भी ध्यान की विधि से जाना है । नाभि केन्द्र पर ध्यान करने से शरीर की छोटी-मोटी सब नाड़ियों की रचना का पता चलता है । योगियों ने ही खोज करके बताया है कि नाभि से कन्धे तक ७२, ६६४ नाड़ियाँ हैं । ऐहिक विद्या से जिन केन्द्रों के दर्शन नहीं होते उन मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धाख्य, आज्ञा और सहस्रार चक्रों की खोज योगविद्या द्वारा ही हुई है । एक-एक चक्र की क्या-क्या विशेषताएँ हैं वे भी योगविद्या से ही खोजी गयी हैं । उन चक्रों का रूपान्तरण कैसे किया जाय ? उनका विकास कैसे किया जाय ? वह भी योगविद्या के द्वारा ही जाना गया है ।

> *जहाँसे विश्व की तमाम बुद्धियों को, दुनिया के बड़े-बड़े वैज्ञानिकों को, बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को, साधु-संतों को प्रकाश मिलता है उस प्रकाश के ज्ञान को ब्रह्मज्ञान कहते हैं ।*

> *जिसने एक बार भी इस ब्रह्मविद्या को जान लिया, फिर उसके लिए कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता, कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता, कुछ भी पाना शेष नहीं रह जाता, कहीं भी जाना बाकी नहीं रह जाता ।*

यदि मूलाधार केन्द्र का रूपान्तरण होता है तो काम राम में बदल जाता है । व्यक्ति की दृष्टि विशाल हो जाती है । उसके कार्य **बहुजनहिताय बहुजनसुखाय** होने लगते हैं । ऐसा व्यक्ति यशस्वी हो जाता है। उसके पदचिह्नों पर चलने के लिए कई लोग तैयार होते हैं । जैसे महात्मा गाँधी, उनका कामकेन्द्र राम में रूपान्तरित हुआ तो वे विश्वविख्यात हो गये ।

योगविद्या एक बलप्रद विद्या है। वह बल अहंकार बढ़ानेवाला नहीं वरन् जीवन के वास्तविक रहस्यों को प्रकटानेवाला और सदा सुखी रहने के काम आनेवाला है।

दूसरा केन्द्र है स्वाधिष्ठान । उसमें भय, घृणा, हिंसा और स्पर्धा रहती है । यह दूसरा केन्द्र यदि रूपान्तरित होता है तो भय की जगह पर निर्भयता का, हिंसा की जगह अहिंसा का, घृणा की जगह प्रेम का और स्पर्धा की जगह पर समता का जन्म होता है। व्यक्ति दूसरों के लिए बड़ा प्यारा हो जाता है । अपने लिए एवं औरों के लिए बड़े काम का हो जाता है ।

जो लोग ब्रह्ममुहूर्त में जाग जाते हैं वे बड़े तेजस्वी होते हैं। जीवन की शक्तियाँ ह्रास होने का और स्वप्नदोष होने का समय प्रायः ब्रह्ममुहूर्त के बाद का ही होता है। जो ब्रह्ममुहूर्त में जाग जाता है उसके ओज-तेज की रक्षा होती है।

अपने शरीर में ऐसे सात केन्द्र हैं। इनकी खोज योगविद्या के द्वारा ही हुई है। लौकिक विद्या ने इनकी खोज नहीं की। ऐसे ही सृष्टि का आधार क्या है ? सृष्टिकर्त्ता से कैसे मिलें ? जीते-जी मुक्ति का अनुभव कैसे हो ? यह खोज ब्रह्मविद्या के द्वारा ही हुई है ।

लौकिक विद्या, योगविद्या और ब्रह्मविद्या। हम लोग लौकिक विद्या में तो थोड़ा-बहुत आगे बढ़ गये हैं लेकिन योगविद्या का ज्ञान नहीं है जिससे विद्यार्थियों का शरीर जितना तंदुरुस्त होना चाहिए और मन जितना प्रसन्न एवं समझयुक्त होना चाहिए, वैसा नहीं है। इसीलिए चलचित्र देखकर कई ग्रेज्युएट व्यक्ति भी आत्महत्या कर लेते हैं। 'एक दूजे के लिए' फिल्म देखकर कई युवान-युवतियों ने आत्महत्या कर ली ।

ऐहिक या लौकिक विद्या के साथ यदि योगविद्या का सहारा नहीं है तो लौकिक विद्यावाला भी करप्शॅन (भ्रष्टाचार) करेगा । लड़ाई-झगड़े करके पेटपालू कुत्तों की नाईं अपना जीवन बितायेगा । ऐहिक विद्या की यह एक बड़ी लाचारी है कि उसके होने के बावजूद भी जीवन में कोई सुख-शांति नहीं होती, शरीर का स्वास्थ्य और मन की दृढ़ता नहीं होती। आजकल की ऐहिक विद्या ऐसी हो गई है कि विद्यार्थी गुलाम होकर ही यूनिवर्सिटी से निकलते हैं । सर्टिफिकेट मिलने के बाद सर्विस की खोज में लगे रहते हैं। सर्विस मिलने पर कहते हैं :'

'I am the best Servent of Indian Government. I am the best servent of British Government.'

आजकल की विद्या मनुष्य को नौकर (Servent) बनाती है । इन्द्रियों एवं मन का गुलाम बनाती है । ऐहिक विद्या मनुष्य को अहंकार का गुलाम बनाती है । ऐहिक विद्या मनुष्य को ईर्ष्या और स्पर्धा से नहीं छुड़ाती तथा काम-क्रोध की चोटों से नहीं बचाती । ऐहिक विद्या इन्सान को लोक-लोकान्तर की गतिविधियों का ज्ञान नहीं कराती। ऐहिक विद्या आदमी को पेट पालने के साधन प्रदान करती है, शरीर की सुविधाएँ बढ़ाने में मदद करती है । मनुष्य शरीर की सुविधाओं का जितना अधिक उपयोग करता है उतनी ही लाचारी उसके चित्त में घुस जाती है । शारीरिक सुविधाएँ जितनी भोगी जाती हैं और योगविद्या की तरफ जितनी लापरवाही बरती जाती है उतना ही मनुष्य अशांत होता जाता है। यही हाल पाश्चात्य जगत का है। पाश्चात्य जगत ने ऐहिक विद्या में, तकनीक के जगत में खूब तरक्की की किन्तु साथ ही साथ अशान्ति भी उतनी ही बढ़ी है।

ऐहिक विद्या को अगर योग का संपुट दिया जाय तो विद्यार्थी ओजस्वी-तेजस्वी बनता है। ऐहिक विद्या का आदर करना चाहिए किन्तु योगविद्या और आत्मविद्या को भूलकर सिर्फ ऐहिक विद्या में ही पूरी तरह से गरकाव हो जाना मानो अपने ही जीवन का अनादर करना है। जिसने अपने जीवन का ही अनादर कर दिया वह जीवनदाता का आदर कैसे कर सकता है ? ...और जो अपने जीवन का एवं जीवनदाता का आदर नहीं कर सकता वह पूर्ण सुखी भी कैसे हो सकता है ?

ऐहिक विद्या की यह एक बड़ी लाचारी है कि उसके होने के बावजूद भी जीवन में कोई सुख-शांति नहीं होती, शरीर का स्वास्थ्य और मन की दृढ़ता नहीं होती।

ऑटोरिक्शा में तीन पहिए होते हैं। पिछला पहिया ठीक है, एक पहिया नहीं है और आगेवाला स्टीयरिंग नहीं है तो ऑटोरिक्शे की बॉडी मात्र (ढाँचा) दिखेगी लेकिन उससे यात्रा नहीं होगी। ऐसे ही जीवन में ऐहिक विद्या तो हो लेकिन उसके साथ योगविद्यारूपी पहिया न हो और ब्रह्मविद्यारूपी स्टीयरिंग न हो तो फिर मनुष्य अविद्या में ही उत्पन्न होकर, अविद्या में ही जीकर, अंत में अविद्या में ही मर जाता है। जैसे व्हील और स्टीयरिंगरहित ऑटोरिक्शा वहीं का वहीं पड़ा रहता है वैसे ही मनुष्य अविद्या में ही पड़ा रह जाता है। माया में ही पड़ा रहता है। माता के गर्भों में उल्टा लटकता ही रहता है। जन्म-मरण के चक्र में फँसता ही रहता है क्योंकि ऐहिक विद्या के साथ-साथ ब्रह्मविद्या और योगविद्या नहीं मिली।

ऐहिक विद्या को पाने का तो एक निश्चित समय होता है किन्तु योगविद्या को, ब्रह्मविद्या को पाने के लिए दस, पंद्रह या बीस वर्ष की मुद्दत नहीं होती। ऐहिक विद्या के साथ-साथ योगविद्या और ब्रह्मविद्या चलनी ही चाहिए। यदि मनुष्य प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त में (सूर्योदय से सवा दो घंटे पूर्व) योगविद्या का अभ्यास करे तो उस समय किया हुआ ध्यान बहुत लाभ देता है। जो लोग ब्रह्ममुहूर्त में जाग जाते हैं वे बड़े तेजस्वी होते हैं। जीवन की शक्तियाँ ह्रास होने का और स्वप्नदोष होने का समय प्रायः ब्रह्ममुहूर्त के बाद का ही होता है। जो ब्रह्ममुहूर्त में जाग जाता है उसके ओज-तेज की रक्षा होती है। जो ब्रह्ममुहूर्त में जागकर जप-ध्यान में लग जाता है उसका ओज-तेज बढ़ता है और वह अध्यात्म की ऊँचाइयों को छू लेता है।

सूर्योदय से दो-पाँच मिनट पहले और दो-पाँच मिनट बाद का समय संधिकाल है। इस समय एकाग्र होने में बड़ी मदद मिलती है। यदि विद्यार्थी ब्रह्ममुहूर्त में उठकर ध्यान करे, सूर्योदय के समय ध्यान करे तथा ब्रह्मविद्या का अभ्यास करे और शिक्षकों से थोड़ी लौकिक विद्या तो सीखे किन्तु दूसरी विद्या उसके अंदर से ही प्रगट होने लगेगी। जो योगविद्या और ब्रह्मविद्या में आगे बढ़ते हैं उनको लौकिक विद्या बड़ी आसानी से प्राप्त होती है।

संत तुकाराम लौकिक विद्या पढ़ने में इतना समय न दे सके किन्तु आज उनके द्वारा गाये गये अभंग महाराष्ट्र यूनिवर्सिटी के एम. ए. के विद्यार्थियों को पढ़ाये जाते हैं।

संत एकनाथजी लौकिक विद्या भी पढ़े थे, योगविद्या भी पढ़े थे। स्वामी विवेकानंद लौकिक विद्या तो पढ़े थे, साथ ही उन्होंने अध्यात्मविद्या का ज्ञान भी प्राप्त किया था। जिन्होंने लौकिक विद्या सीखी है और उन्हें योगविद्या मिल जाय तो उनके जीवन में चार चाँद लग जाते हैं। उनके द्वारा बहुतों का हित हो सकता है।

योगविद्या एवं ब्रह्मविद्या का थोड़ा-सा अभ्यास करें तो लौकिक विद्या उनको आसानी से प्राप्त हो जाती है। लौकिक विद्या के अच्छे-अच्छे रहस्य वे लोग खोज सकते हैं।

योगविद्या एक बलप्रद विद्या है। वह बल अहंकार बढ़ानेवाला नहीं वरन् जीवन के वास्तविक रहस्यों को प्रकटानेवाला और सदा सुखी रहने के काम

आनेवाला है। मनुष्य के पास योगबल नहीं है तो फिर उसके पास धनबल, सत्ताबल और बाहुबल हो तो भी वह उस बल का क्या कर डाले इसका कोई पता नहीं। सत्ता और धन का कैसा उपयोग करे इसका कोई पता नहीं। जीवन में यदि योगविद्या और ब्रह्मविद्या साथ में हो तो... भगवान श्रीराम के पास लौकिक विद्या के साथ योगविद्या और ब्रह्मविद्या थी तो हजारों विघ्न-बाधाओं के बीच भी उनका जीवन बड़ी शांति, आनंद और सुख से बीता, बड़ी समता से व्यतीत हुआ। श्रीकृष्ण के जीवन में लौकिक विद्या, योगविद्या और ब्रह्मविद्या तीनों थीं। उनके जीवन में भी हजारों विघ्न-बाधाएँ आयीं लेकिन वे सदा मुस्कुराते रहे।

लौकिक विद्या शारीरिक सुविधा के उपयोग में आती है। योगविद्या से इस लोक एवं परलोक के रहस्य खुलने लगते हैं एवं आत्मविद्या से परमात्मा के साथ एकता हो जाती है।

जितने अंश में योगविद्या और ब्रह्मविद्या है उतने अंश में ऐहिक विद्या भी शोभा देती है। किन्तु केवल लौकिक विद्या है तथा योगविद्या और ब्रह्मविद्या नहीं है तो फिर ऐहिक विद्या के प्रमाणपत्र मिल जाते हैं। उससे कुछ धन या कुछ सत्ता मिल जाती है किन्तु गहराई से देखो तो भीतर खोखलापन ही रहता है। भीतर कोई तसल्ली नहीं रहती, आत्मतृप्ति नहीं रहती, कोई शांति नहीं रहती। भविष्य कैसा होगा ? कोई पता नहीं। आत्मा क्या है ? कोई पता नहीं। मोक्ष क्या है ? कोई पता नहीं। जीवन अज्ञान में ही बीत जाता है।

अज्ञान में जो ज्ञान होता है वह भी अज्ञान का रूपान्तरण होता है। जैसे अँधेरे में रस्सी दिखी तो कोई बोलता है कि 'यह साँप है।' दूसरा बोलता है कि 'यह साँप नहीं, यह तो दरार है।' तीसरा बोलता है कि 'यह दरार नहीं, यह तो पानी का बहाव है।' चौथा बोलता है कि 'यह मरा हुआ साँप है।' कोई बोलता है कि 'अच्छा, जाओ जरा देखो।' वह जाता तो है किन्तु दोनों तरफ भागने की जगह खोजता है क्योंकि अज्ञान में ज्ञान हुआ है। रस्सी में सर्प का ज्ञान हुआ है। ऐहिक विद्या अविद्या में ही मिलती है। अज्ञान की दशा में ही ऐहिक शिक्षा का समावेश होता है।

आत्मा का ज्ञान नहीं है। आत्मा-परमात्मा क्या है उसका ज्ञान नहीं है और हम लौकिक शिक्षा पाते हैं तो अज्ञानदशा में जो कुछ जाना जाता है वह अज्ञान के अन्तर्गत ही होता है। हकीकत में जानकारी मिलती है बुद्धि को और हम समझते हैं कि हम जानते हैं। सूचना मिलती है मन को और समझते हैं कि हम जानते हैं। हम डॉक्टर हो गये तो बुद्धि तक, वकील हो गये तो बुद्धि तक, उद्योगपति हो गये तो बुद्धि तक लेकिन बुद्धि के पार की जो विद्या है वह है ब्रह्मविद्या।

जहाँसे विश्व की तमाम बुद्धियों को, दुनिया के बड़े-बड़े वैज्ञानिकों को, बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों को, साधु-संतों को प्रकाश मिलता है उस प्रकाश के ज्ञान को ब्रह्मज्ञान कहते हैं। जहाँसे विश्व को अनादिकाल से ज्ञान मिलता आ रहा है, चतुरों की चतुराई, विद्वानों को विद्या सँभालने की योग्यता, प्रेम, आनंद, साहस, निर्भयता, शक्ति, सफलता, इस लोक और परलोक के रहस्यों का उद्घाटन करने की क्षमता, ये सब जहाँ से मिलता आया है, मिल रहा है और मिलता रहेगा एवं एक तृण जितनी भी जिसमें कमी नहीं हुई उसे कहते हैं ब्रह्म-परमात्मा। ब्रह्म-परमात्मा को, आत्मा को जानने की विद्या को ही ब्रह्मविद्या कहते हैं।

जिसने एक बार भी इस ब्रह्मविद्या को जान लिया, फिर उसके लिए कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता, कुछ भी करना शेष नहीं रह जाता, कुछ भी पाना शेष नहीं रह जाता, कहीं भी जाना बाकी नहीं रह जाता, ऐसे अकर्त्तृत्व-अभोक्तृत्वपद में वह प्रतिष्ठित हो जाता है।

❀

(पृष्ठ ९ का शेष)

अगर सत्यस्वरूप परमात्मा में विश्रांति पाकर निर्णय पक्का करोगे तो आप भी राजा जनक की नाईं, शिवाजी महाराज की नाईं, नानकजी की नाईं, प. पू. लीलाशाह बापू की नाईं नैष्कर्म्यसिद्धि को प्रगट करनेवाले हो जाओगे। आप तो तर जाओगे, आपके दर्शन-सत्संग सुनकर लोग भी कृतार्थ होने लग जाएँगे

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

सबमें तू ही तो है...

हम जब सात साल के एकांतवास में थे तो कभी-कभी ऐसी जगह पर जाते कि लोग बिल्कुल बुरा हाल कर दें।

डीसा में छोटा-सा आश्रम तो था लेकिन रात में आश्रम से निकलकर चल देते और नदी के किनारे ऐसी जगह पर पहुँच जाते जहाँ खूँखार आदमी रहते थे।

एक दिन दो दारूड़िये (शराबी) शराब के नशे में चूर थे। मुझे देखकर बोले :

''ऐ बाबा का बच्चा ! इधर आ।''

हम गये पास में तो उन्होंने रख दिया एक बड़ा धारिया मेरी गर्दन पर। जरा-सा खींचने पर पेड़ की डालियाँ कट जाती हैं उसको धारिया बोलते हैं। उसके आगे चाकू-वाकू तो कुछ भी नहीं। ऐसा धारिया उठाकर गले पर रख दिया और बोला :

''बाबा ! खींचूँ।''

वह नशे में था। जरा-सा खींचने की कोशिश करता तो भी आधा गला तो कट ही जाता।

मैंने कह दिया : ''खींच।''

अंदर सोचा कि किसको खींचेगा ? इसको (गले को) खींचेगा। हमको क्या खींचेगा ? लेकिन हमारा प्रारब्ध शेष था। उसके हाथ काँप उठे। धारिया हाथ से छूट गया और वह मेरे पैरों पर गिर पड़ा। मैं अभी तक जिंदा हूँ।

वह नशे में था। जरा-सा खींचने की कोशिश करता तो भी आधा गला तो कट ही जाता। लेकिन हमारा प्रारब्ध शेष था। उसके हाथ काँप उठे। धारिया हाथ से छूट गया और वह मेरे पैरों पर गिर पड़ा। मैं अभी तक जिंदा हूँ।

कभी-कभी मोचीवास में चला जाता। अपने आपको कहता कि 'फूलों की सुगंध तो खूब सूँघी, अब यह सुंगध भी देख, बेटा !'

वैसे तो मैं अपना भोजन स्वयं पकाकर खाता था लेकिन एक दिन सोचा कि 'देखें, भिक्षा माँगने से क्या होता है ?'

करीब दो बजे निकला। लोग खा-पीकर, बर्तन माँजकर बैठ जायें उस समय भिक्षा माँगने गया। कोई सिंधी माई उस समय घर में भोजन बना रही थी। अभी उसने तवे पर पहली ही रोटी डाली थी कि हम पहुँच गये।

हमने कहा : ''नारायण हरि।''

माई ने तो सुनायी गालियाँ : ''हट्टा-कट्टा लाल टमाटर जैसा रोटी माँगने निकला है। पहली रोटी तवे पर डाली और टपक पड़ा नारायण-हरि करके। चल, चल...''

हमने अपने मन से कहा : 'देख बेटे ! क्या हाल हैं ? बाबाजी... बाबाजी... तो खूब होता है। अब देख बेटा !

फिर दूसरे दिन गये। लोगों को पता चल गया तो कोई खीर तो कोई मालपूआ तो कोई हलुआ बनाकर प्रतीक्षा करने लगा : 'कब आयेंगे ? कब आयेंगे ?'

किसके घर का लूँ और किसके घर का न लूँ... रास्ते में भिखारी मिलते उनको खिलाते और हम भी खाते। वह भी देख लिया। फिर व्यर्थ की प्रवृत्ति लगी तो उसे भी छोड़ दिया।

❀

युक्ति से मुक्ति

किसी गाँव का सरपंच बड़ा भला आदमी था। उसने अपने जीवन में साधु-संतों का काफी संग किया था। अपनी मृत्यु के समय वह वसीयत लिखकर गया था जिसमें अन्य बातों के साथ

एक बात बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। उसने लिखा था : ''...मेरे १९ ऊँट हैं। उनमें से आधे ऊँट मेरे बेटे को दें। एक चौथाई ऊँट मेरे वफादार नौकर को दें और पाँचवें हिस्से के ऊँट मेरी ईमानदार नौकरानी को दें।''

यह वसीयत देखकर सभी पंच विचारमग्न हो गये। १९ ऊँट के आधे अर्थात् साढ़े नौ ऊँट कैसे दें ? एक चौथाई अर्थात् पौने पाँच ऊँट भी किस तरह दें और पाँचवाँ हिस्सा अर्थात् करीब पौने चार ऊँट भी कैसे दें ?... सरपंच की वसीयत को कैसे पूरा किया जाय ?

माया में सब लोग भूल जाते हैं, चकरा जाते हैं किन्तु जिसको किन्हीं आत्मवेत्ता महापुरुष की कुंजी मिल जाती है तो वह इस माया में रहते हुए भी अपना हिसाब साफ रखता है एवं सबको सत्ता देनेवाले परब्रह्म परमात्मा के ज्ञान को पाने में भी कामयाब हो जाता है।

फिर पंचों ने सोचा कि 'यदि एक ऊँट ले भी लें तब भी १८ ऊँट होंगे। अठारह ऊँट के आधे नौ ऊँट होंगे किन्तु एक चौथाई करने में ऊँट को साढ़े चार कैसे किया जाय और पाँचवाँ भाग भी कैसे किया जाय ? पंच बड़े चिंतित थे।

इतने में कोई महात्मा आ गये। उन्होंने सारी वसीयत पढ़ी। फिर थोड़ा-सा अंतरात्मा की गहराई में गोता मारकर बोले :

''तीनों हिस्सेदारों को अपने हिस्से से अधिक ऊँट मिलेंगे तो चलेगा ?''

''हाँ हाँ, क्यों नहीं चलेगा ?''

''तो ऊँट के हिस्से करना बड़ा आसान है। जैसा लिखा है वैसा ही हो सकता है और एक भी ऊँट कटेगा भी नहीं।''

पंच : ''महाराज ! वह कैसे ?''

महाराज : ''देखो, मैं ऊँट पर आया हूँ। १९ ऊँट उस सरपंच के हैं। उनमें मैं अपना २० वाँ ऊँट मिला देता हूँ। अब इनमें से आधे ऊँट अर्थात् १० ऊँट उसके बेटे को दे दो। एक चौथाई हिस्सा अर्थात् पाँच ऊँट उसके नौकर को दे दो और पाँचवाँ हिस्सा अर्थात् चार ऊँट उसकी नौकरानी को दे दो। अब बचा बीसवाँ ऊँट जो कि मेरा है सो मैं ले जा रहा हूँ।''

सभी पंच हर्ष के साथ विस्मित हो उठे कि इतना आसान था !

ऐसे ही आपके पास पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच प्राण हैं एवं मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये चार अंतःकरण हैं। इन सभी १९ चीजों को चलानेवाला बीसवाँ है आपका आत्मा। शरीर और इन्द्रियाँ आदि १९ चीजें यहीं छूट जाती हैं किन्तु इन सबको सत्ता देनेवाला आत्मा ही आपका सच्चा साथी है जो सदैव आपके साथ रहता है।

किसी संत-महापुरुष के श्रीचरणों में बैठकर जान लो उसको पाने की युक्ति और लग जाओ तत्परता से, तो हो जाये बेड़ा पार।

महात्मा ने अंतरात्मा की गहराई में गोता मारा तो हिसाब करने में कहाँ देर लगी ? नहीं तो सबका दिमाग चकरा रहा था। ऐसे ही इस माया में सब लोग भूल जाते हैं, चकरा जाते हैं किन्तु जिसको किन्हीं आत्मवेत्ता महापुरुष की कुंजी मिल जाती है तो वह इस माया में रहते हुए भी अपना हिसाब साफ रखता है एवं सबको सत्ता देनेवाले परब्रह्म परमात्मा के ज्ञान को पाने में भी कामयाब हो जाता है।

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी तरह की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीआर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) **'ऋषि प्रसाद'** के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरूआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जाएगी।

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

छत्रपति शिवाजी की महानता

(शिवाजी जयंती : २८ अप्रैल पर विशेष)

शास्त्र में कहा गया है :

ब्रह्मचर्यं परं बलम्। 'ब्रह्मचर्य परम बल है।'

जिसके जीवन में ब्रह्मचर्य का पालन नहीं होता उसकी आयु, तेज, बल, वीर्य, बुद्धि, लक्ष्मी, कीर्ति, यश, पुण्य और प्रीति - ये सब नष्ट हो जाते हैं। उसके यौवन की सुरक्षा नहीं होती।

दुनिया में जितने भी महान् व्यक्ति हो गये हैं उनके मूल में ब्रह्मचर्य की ही महिमा है।

पूरी मुगल सल्तनत जिनके नाम से काँपती थी, ऐसे वीर छत्रपति शिवाजी की वीरता का कारण भी उनका संयम ही था।

एक बार मुगल सरदार बहलोल खाँ एवं शिवाजी की सेनाओं में युद्ध चल रहा था। शिवाजी युद्ध के विचारों में ही खोये हुए थे कि सेनापति भामलेकर तेजी से घोड़े को दौड़ाते हुए शिवाजी के पास आये।

भामलेकर को देखकर ही शिवाजी समझ गये कि ये विजयी होकर आये हैं किन्तु उनके पीछे दो सैनिक जो डोली लेकर आ रहे थे, उसके बारे में उनको कुछ समझ में नहीं आया।

वे दौड़कर नीचे आये और भामलेकर को गले लगा लिया।

भामलेकर ने कहा : ''छत्रपति ! आज मुगल सेना दूर तक खदेड़ दी गयी है। बेचारा बहलोल खाँ जान बचाकर भाग गया। अब हिम्मत नहीं कि मुगल सेना इधर की तरफ मुँह भी कर सके।''

शिवाजी : ''वह तो मैं तुम्हें देखकर ही समझ गया था, भामलेकर ! किन्तु इस डोली में क्या है ?''

अट्टहास्य करते हुए भामलेकर ने कहा : ''इसमें मुस्लिमों में सुन्दरता के लिए प्रसिद्ध बहलोल खाँ की बेगम है, महाराज ! मुगल सरदार ने हजारों-लाखों हिन्दू नारियों का सतीत्व लूटा है। उसीका प्रतिशोध लेने के लिए मेरी ओर से आपको यह भेंट है।''

यह सुनकर शिवाजी अवाक् रह गये। उन्हें अपने किसी सरदार और सामन्त से ऐसी मूर्खता की आशा नहीं थी। कुछ देर ठहरकर वे डोली के पास गये तथा पर्दा हटाया और बहलोल खाँ की बेगम को बाहर आने के लिए कहा। डरती-सहमती वह बाहर आयी तब शिवाजी ने उसे ऊपर से नीचे तक निहारा और कहा :

''सचमुच, तुम बड़ी सुन्दर हो। किन्तु अफसोस है कि मैं तुम्हारी कोख से पैदा नहीं हुआ। नहीं तो मैं भी तुम्हारे जैसा ही सुंदर होता।''

उन्होंने अपने एक अन्य अधिकारी को आदेश दिया कि वह बेगम को बाइज्जत ले जाकर बहलोल खाँ को सौंप दे। फिर भामलेकर की ओर मुड़कर बोले :

''तुम मेरे साथ इतने दिनों तक रहे पर मुझे पहचान नहीं पाये। वीर उसे नहीं कहते जो अबलाओं पर प्रहार करे, उनका सतीत्व लूटे। हमें अपनी सांस्कृतिक गरिमा और मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए।''

शिवाजी के कथन को सुनकर भामलेकर को अपनी भूल के लिए पश्चात्ताप होने लगा। इधर बेगम को ससम्मान लौटाया हुआ देखकर बहलोल खाँ भी विस्मित हुए बिना नहीं रहा। वह तो सोच रहा था कि 'अब उसकी सबसे प्रिय बेगम शिवाजी के महल की शोभा बन चुकी होगी।'

> *''माफ कर दो मुझे मेरे फरिश्ते ! बेगुनाहों का खून मेरे सर चढ़कर बोलेगा और मैं उनकी आह से जला करूँगा। उस समय आपकी सूरत की याद मुझे थोड़ी-सी ठंडक पहुँचायेगी।''*

परन्तु बेगम ने अपने पति को छत्रपति के बारे में जो कुछ बताया वह जानकर तथा अधिकारी के हाथों भेजा गया पत्र पढ़कर बहलोल खाँ जैसा क्रूर सेनापति भी पिघल गया। पत्र में शिवाजी ने अपने सेनानायक की गलती के लिए क्षमा माँगी थी। इस पत्र को देखकर स्वयं को बहुत महान् वीर और पराक्रमी समझनेवाला बहलोल खाँ अपनी ही नजर में शिवाजी के सामने बहुत छोटा दिखाई देने लगा। उसने निश्चय किया कि 'इस फरिश्ते को देखकर ही दिल्ली लौटूँगा।'

"तुम मेरे साथ इतने दिनों तक रहे पर मुझे पहचान नहीं पाये। वीर उसे नहीं कहते जो अबलाओं पर प्रहार करे, उनका सतीत्व लूटे। हमें अपनी सांस्कृतिक गरिमा और मर्यादा का ध्यान रखना चाहिए।"

इसके लिए आग्रह-पत्र भेजा गया। बहलोल खाँ और शिवाजी के मिलनें का स्थान निश्चित हुआ। नियत तिथि, समय व स्थान पर शिवाजी बहलोल खाँ से पहले ही पहुँच गये। बहलोल खाँ जब वहाँ पहुँचा तो पश्चात्ताप व आत्मग्लानि के साथ-साथ शिवाजी के व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धाभाव से इतना अभिभूत था कि देखते ही उनके पैरों में झुक गया और बोला :

"माफ कर दो मुझे मेरे फ़रिश्ते ! बेगुनाहों का खून मेरे सर चढ़कर बोलेगा और मैं उनकी आह से जला करूँगा। उस समय आपकी सूरत की याद मुझे थोड़ी-सी ठंडक पहुँचायेगी।"

"जो हुआ सो हुआ। अब आगे का होश करो।" एक पराजित और श्रद्धानत सेनापति को गले लगाते हुए छत्रपति शिवाजी ने कहा।

इन सबके मूल में क्या था ? समर्थ रामदास जैसे महापुरुष का सान्निध्य, यौवन-सुरक्षा के सिद्धांत का आदर, सज्जनता एवं दृढ़ संयम। अपने संयम के कारण ही वे भारतीय संस्कृति की गरिमा को बनाये रखने में सक्षम हुए एवं शत्रु के हृदय में भी अपना स्थान बना सके।

हे भारत के युवानों ! उठो, जागो और अपने पूर्वजों के गौरव को याद करो। अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए कमर कसकर तैयार हो जाओ। अश्लील फिल्म, उपन्यास, साहित्य आदि गंदगी से बचो एवं 'यौवन-सुरक्षा' जैसी पुस्तकें पढ़कर, शिवाजी जैसे महान् योद्धाओं का जीवन-चरित्र पढ़कर एवं ऋषि-मुनियों की दिव्य देन सत्शास्त्रों को पढ़कर अपने जीवन को उन्नत बनाओ। सत्संग-श्रवण करके, संतों के द्वारा श्रेष्ठ मार्गदर्शन पाकर, संयम एवं सदाचार का आश्रय लेकर अपने जीवन में भी ओजस्विता-तेजस्विता भर दो। पाश्चात्य जगत के अंधानुकरण से बचकर रॉक-पॉप, डिस्को आदि जीवन-शक्ति का ह्रास करनेवाली विकृति से बचकर अपनी भव्य भारतीय संस्कृति को अपनाओ। शाबाश वीर ! शाबाश...

मौन की महिमा

मौन में अथाह सामर्थ्य है। जिसने भी इसका रहस्य जानकर इसका पालन किया है वह हजारों व्यक्तियों के बीच भी अलग से चमकता है।

किसी अखबार में एक विज्ञापन छपा था कि 'सूक्ष्म यंत्रों का प्रबंध करनेवाली कंपनी में एक अधिकारी की जरूरत है...।'

बढ़िया पद था, अतः काफी लोगों के आवेदनपत्र आये। नियत तिथि पर सभी आवेदक साक्षात्कार के लिए अपने-अपने प्रमाणपत्र आदि लेकर आ पहुँचे। आवेदकों में कोई चाय पी रहा था तो कोई बीड़ी फूँक रहा था, कोई गपशप लगा रहा था तो कोई अधिकारियों से जोड़-तोड़ कर रहा था। काफी कोलाहल हो रहा था।

इसी कोलाहल भरे वातावरण में एक नौजवान ऐसा भी था, जो शांत होकर बैठा था। वह न किसीसे बातें कर रहा था न ही अन्य कोई कार्य। केवल शांत, स्थिर चित्त से मौन होकर बैठा था।

इतने में सूक्ष्म यंत्रों से सूक्ष्म आवाज आयी :

''हम एक ऐसे युवक को पसंद करना चाहते हैं जो बड़ा शांत हो एवं पैनी दृष्टि रखता हो। इस ध्वनि को जो सुन रहा हो ऐसा युवक आ जाय एवं नियुक्तिपत्र ले जाय।''

इतने कोलाहलभरे वातावरण में कोई भी उन सूक्ष्म यंत्रों की आवाज न सुन सका। किन्तु जो नवयुवक शांत होकर बैठा था, वह झट उठ खड़ा हुआ और भीतर गया। अधिकारियों ने उसे नियुक्तिपत्र दे दिया।

वह नियुक्तिपत्र लेकर बाहर आया तब लोगों से बोल उठा :

''यहाँ भीड़ क्यों कर रखी है ? मैं नियुक्त हो चुका हूँ।''

यह सुनकर लोग क्रोधित हो उठे तथा बोलने लगे कि : 'देर से आया था। दूर खड़ा था। सफल कैसे हो गया ? रिश्वत बगैरह दी थी क्या ?' आदि-आदि।

तब उस नियुक्तिपत्र-प्राप्त युवक ने शांतिपूर्वक उत्तर देते हुए कहा :

''भीतर जाने से पहले मैंने आप सबका ख्याल किया लेकिन मैंने देखा कि आप में से कोई भी सूक्ष्म यंत्रों से निकली इस ध्वनि को नहीं सुन पा रहा था कि 'हम उसीको पसंद करना चाहते हैं जो इस सूक्ष्म ध्वनि को सुन ले। जो इस आदेश को सुन रहा हो वह तुरंत आ जाय। उसीको नियुक्त किया जायेगा। मैंने आदेश सुन लिया किन्तु आप लोग न सुन पाये।''

ऐसे ही परम पिता परमात्मा भी सदैव आदेश दिये जा रहा है। परमात्मा भी सदा विजयपत्र हाथ में लिए हमारा इंतज़ार कर रहा है लेकिन हम इस ऐहिक जगत में इतने बहिर्मुख हो गये हैं कि उस परम पिता परमात्मा के आदेश को, संकेत को समझ ही नहीं पाते हैं इसीलिये, विजयी भी नहीं हो पाते हैं।

❀

(पृष्ठ ८ का शेष)

प्रतिकूलता की निवृत्ति में लग जाते हैं किन्तु जिसमें लगना चाहिए उसमें नहीं लगते। पूजा भी करते हैं, नमाज भी पढ़ते हैं, ध्यान-भजन भी करते हैं लेकिन जो मुख्य बात है उधर ध्यान नहीं देते तो उनसे थोड़ा-बहुत मिलता है फिर खर्च हो जाता है, फिर मिलता है फिर खर्च हो जाता है और ऐसा करते-करते जीवन पूरा हो जाता है लेकिन इच्छापूर्ति की वासना बनी रहती है। फिर जीव दूसरा जन्म लेता है और उसमें भी वही करता है।

भगवान बुद्ध कहते थे : ''हे भिक्षुओं ! तुमने इतने सारे जन्म पाये और हर जन्म में तुम रोये। अगर हर जन्म के तुम्हारे रुदन के आँसू इकट्ठे किये जाएँ तो इस महान् सरोवर से भी ज्यादा हो सकते हैं। तुमने जितने जन्म पाये हैं उन जन्मों की अगर हड्डियाँ एकत्रित की जायें तो हिमालय से भी ज्यादा हो सकती हैं। अब रुको, समय बीता जा रहा है। सावधान हो जाओ।''

कोई-कोई सत्पात्र महापुरुषों के वचन सुनकर इसी जन्म में सावधान हो जाते हैं, नहीं तो सुना हुआ उपदेश है... देर-सबेर ये संस्कार तो काम करेंगे ही। ज्ञानवान का सान्निध्य कभी व्यर्थ नहीं जाता है। सिंह की दाढ़ में आया हुआ शिकार क्वचित् छूट सकता है लेकिन ज्ञानी के हृदय में आया हुआ सत्‌शिष्य कभी कल्याण से वंचित् नहीं हो सकता।

भोगी इच्छापूर्ति का प्रयत्न करता है। कर्मी इच्छाओं को सुन्दर करने का प्रयत्न करता है। जिज्ञासु इच्छानिवृत्ति का प्रयत्न करता है। योगी इच्छाओं को दबा देता है। जिन्होंने अपने सत्यस्वरूप को यहीं पा लिया है, पहचान लिया है, जिनकी जिज्ञासापूर्ति हो गयी है, जिन्हें परम प्रेम की प्राप्ति हो गयी है, जिनको इच्छापूर्ति का राग नहीं है और इच्छानिवृत्ति के लिए जिनका कोई प्रयत्न नहीं है, जो इन सबसे पार पहुँचे हुए हैं, सत्य में टिके हुए हैं उन सद्‌गुरु के श्रीचरणों में मेरे बार-बार प्रणाम हैं...

❀

(पृष्ठ ११ का शेष)

नहीं जागने में लाभ कुछ, नहीं हानि कोई स्वप्न से।
नहीं बैठने से जाय कुछ, नहीं आये हैं कुछ यत्न से॥
निर्लेप जो रहता सदा, सो सिद्ध मुक्त कृतार्थ है।
नहीं त्याग हो नहीं हो ग्रहण, यह ही परम पुरुषार्थ है॥

❀

गौमाता : रोग-दोषनिवारिणी

[गतांक का शेष]

(९) **रोगनियंत्रण** : आज रोगनियंत्रण के नये-नये उपाय खोजे जा रहे हैं। इन दवाओं की खोज तथा प्रयोग में अनेक वैज्ञानिक तथा डॉक्टर लगे हैं। दवाओं की खोज तथा उत्पादन पर भी बड़ी राशि खर्च होती है। ये दवाएँ रोगनियंत्रण के साथ-साथ प्रतिक्रियाएँ भी करती हैं जिसके घातक परिणाम आते ही रहते हैं। यदि हम गाय के दूध, घी तथा मट्ठे का प्रयोग करें तो मनुष्यों में रोगप्रतिरोधक क्षमता स्वतः ही बढ़ जाएगी। इसके अतिरिक्त कम-से-कम पाचनसंबंधी रोगों से तो बचा ही जा सकेगा। हवा, पानी और खाद्य पदार्थों के साथ कितना विष हम प्रतिदिन खाते-पीते हैं ! वे सभी गाय के दूध, घी तथा मट्ठे से स्वतः ही निर्विष होते रहेंगे। ज़ीवनभर गाय का दूध पीनेवाले को कैंसर जैसें भयंकर रोग उत्पन्न ही नहीं होते हैं।

गाय के विभिन्न उत्पाद (दूध, दही, मट्ठा, घी, मूत्र और गोबर) में बहुत से असाध्य रोगों को भी ठीक करने की क्षमता है। इनका प्रयोग सस्ता, सरल तथा सुलभ है और इनसे किसी प्रकार की प्रतिक्रिया होने का भय नहीं है। गाय से प्राप्त सभी उत्पादों में इतने औषधीय गुण हैं कि यहाँ उनका वर्णन करना संभव नहीं है।

गाय मानव जाति को बाह्य प्रदूषण से ही नहीं, आंतरिक प्रदूषण से भी बचाती है। पंचामृत, पंचगव्य तथा गोषडंग से मानव शरीर में व्याप्त सभी तरह के पाप तथा आधि-व्याधि पूरी तरह नष्ट हो जाते हैं। गाय के दूध जैसा पोषक, शोधक और सारक अन्य दूसरा पदार्थ नहीं है। इसलिए गाय के महत्त्व को हम पहचानें। इस दैवी निधि का संरक्षण करें। यदि इस दैवी निधि को खो दिया तो पुनः प्राप्त करना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाएगा।

पृथ्वीलोक के लिए गौ एक अमूल्य स्वर्गीय ज्योति है जिसका निर्माण भगवान ने मानव-कल्याणार्थ आशीर्वादरूप में किया है। भगवान के प्रसादस्वरूप अमृततुल्य गोदुग्ध का पान करके मानवगण ही नहीं, देवगण भी तृप्त और संतुष्ट होते हैं इसीलिए गोदुग्ध को 'अमृत' कहा जाता है। विश्व में गोदुग्ध के समान कोई अन्य पौष्टिक पदार्थ नहीं है। जन्म से मृत्यु पर्यंत किसी भी अवस्था में दुग्ध निषिद्ध नहीं है। स्वास्थ्य की दृष्टि से दुग्ध पूर्णाहार माना गया है।

दुग्ध तो भैंस व बकरी से भी मिलता है तथा भैंस का दूध अधिक चिकनाईयुक्त होने के कारण बलवर्धक होता है लेकिन इसको पीने से शरीर का विकास अधिक तथा बुद्धि का विकास कम होता है। भैंस का दूध पीने से आलस्य तथा प्रमाद अधिक बढ़ता है। बकरी का दूध हल्का, पाचक तथा रेचक माना जाता है। परंतु रोगी को पथ्य के रूप में गाय का दूध ही दिया जाता है। अन्य दुग्धों की अपेक्षा गाय का दुग्ध मधुर, शीतल, वात-पित्त तथा रक्तविकार का नाशक है। यह जीवन के लिए उपयोगी, सर्वदा सेवनयोग्य, जरा-व्याधिनाशक रसायन, रोगों को नष्ट करनेवाला, बुद्धिवर्धक, बलवर्धक, दुग्धवर्धक, पाचक, रेचक (हल्का दस्तावर) तथा थकावट को दूर करनेवाला है। यह आयु को स्थिर रखता है या बढ़ाता है।

गायों में देशी गाय का दूध तथा देशी गायों में भी जंगल में चरनेवाली गाय का दूध सबसे अधिक उपयोगी तथा अच्छा माना जाता है। गाय की नस्ल तथा उनके रंग के अनुसार गाय के दूध में विभेद होता है तथा गुण

भी अलग-अलग होते हैं। जैसे कि काली गाय का दूध वातनाशक तथा अधिक गुणवान होता है। पीली गाय का दूध वात तथा पित्तनाशक होता है। सफेद गाय का दूध कफकारक तथा बुद्धिदायक होता है। लाल एवं चितकबरी गाय का दूध वातनाशक होता है।

गोदुग्ध को पीने के समय का भी महत्त्व होता है। गौ का धारोष्ण दूध (ताजा दूध) बलकारक, अमृत के समान, अग्निदीपक, त्रिदोषनाशक होता है। प्रातःकाल पिया हुआ दूध ब्रंहण तथा अग्निदीपक होता है। दोपहर में पिया हुआ दूध बलवर्धक, कफकारक तथा पित्तनाशक होता है। रात्रि में पिया हुआ दूध शरीर की वृद्धि करता है, क्षय का नाश करता है तथा वृद्ध शरीर में तेज उत्पन्न करता है। सबसे श्रेष्ठ गाय का धारोष्ण दूध ही माना जाता है।

गौर्वै प्रतिधुक्। तस्मै शृतं तस्यै शरस्तस्यै दधि तस्यै मस्तु तस्याऽआतंचनं तस्मै नवनीतं तस्यै घृतं तस्याऽआमिक्षा तस्यै वाजिनम्।

(शतपथ ब्राह्मण : (३/३/३/२)

गौमाता हमें प्रतिधुक् (ताजा दूध), शृत (गरम दूध), शर (मक्खन निकाला हुआ दूध), दही, मट्ठा, घृत, खीस, वाजिन (खीस का पानी), नवनीत तथा मक्खन ये दस प्रकार के अमृततुल्य भोज्य पदार्थ देकर आरोग्यता, बल, बुद्धि एवं ओज प्रदान करती है। इनमें से गोदुग्ध, दही, मट्ठा, घी तथा खीस का विशेष महत्त्व है। इनके औषधीय गुणों का वर्णन निम्न प्रकार है :

(१) गोदुग्ध :

प्रवरं जीवनीयानां क्षीरमुक्तं रसायनम्।

(सुश्रुत संहिता अ.४५)

गोदुग्ध को सुश्रुत संहिता के अनुसार जीवनी शक्तियों में सर्वश्रेष्ठ रसायन माना गया है। कुछ रोगों में इसका प्रयोग है।

जुकाम : यह बहुत साधारण परंतु सभी व्यक्तियों को होनेवाला रोग है। इस रोग में दूषित स्राव नाक से बहता रहता है। बहुत अधिक समय तक जुकाम रहने पर नजला बन जाता है जिससे बुढ़ापा जल्दी आ जाता है, बाल सफेद हो जाते हैं तथा चेहरा निस्तेज हो जाता है। जुकाम को दवा-गोली से रोकना भी अच्छा नहीं माना जाता है। यदि जुकाम के समय भोजन सादा, सुपाच्य किया जाय तथा कब्ज न हो तो गाय के दूध में शहद मिलाकर पीना लाभदायक रहता है।

डिप्थीरिया : इसे पसली चलना या हब्बा-डब्बा रोग भी कहा जाता है। बच्चों का यह रोग जानलेवा होता है। इस रोग में बच्चे का दम घुटता है, आँखें बाहर निकल आती हैं, बुखार तेज होता है। रोग का पता चलते ही दो चम्मच गुनगुने दूध में आधा चम्मच गोघृत तथा एक चम्मच शहद मिलाकर बच्चे को चटाते रहें। गले और सीने की सिकाई करते रहें। गाय का गुनगुना घी बच्चे की छाती और गले पर मलते रहें। इससे बहुत लाभ मिलता है।

थकावट : अत्यधिक थकावट होने पर गोदुग्ध में ढेर सारी मलाई या गाय का घी तथा मिश्री डालकर खूब फेंटकर पियें। साथ ही किसी बर्तन में गुनगुना पानी लेकर उसमें दो चम्मच साधारण नमक मिलाकर पैरों को घुटनों तक मल-मलकर धोयें। कुछ ही समय में सारी थकान दूर हो जाएगी।

नकसीर : कभी-कभी गर्मी के कारण या नाक की रक्तवाहिनियों की दीवार कमजोर हो जाने से नाक से खून निकलने लगता है। ऐसा बार-बार होंने से काफी कमजोरी आती है। इसके उपचार के लिए गाय के उबले दूध को एक कप में लें। उसमें गाय का ही पुराना घी मिलाकर उसकी भाप को सूँघें। जब दूध गुनगुना रह जाय तब मिश्री डालकर पी जायें। नाक में सुबह-शाम गाय का घी लगायें तथा ललाट व सिर पर भी इसकी मालिश करें। यदि गाय के दूध में गाजर का रस मिलाकर पीते रहें तो नकसीर कभी भी नहीं फूटेगी।

(क्रमशः)

महत्त्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ६६ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया अप्रैल तक अपना नया पता भिजवा दें।

चार प्रश्न

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

राजा भोज के दरबार में विद्वानों की सभा का आयोजन होता ही रहता था। एक बार राजा भोज के राजपंडित से द्वेष करनेवाले किसी द्वेषी आदमी ने राजपंडित को नीचा दिखाने के लिए राजा भोज से प्रार्थना की : ''राजपंडित से ये चार प्रश्न पूछे जायें - 'है, है, है। है, है, नहीं। नहीं, नहीं, है और 'नहीं, नहीं, नहीं' का मतलब क्या है ?''

राजपंडित के दरबार में आने पर राजा भोज ने उनसे यह प्रश्न किया, तब उन्होंने १५ दिन की मुहलत माँगी।

राजा भोज ने उन्हें १५ दिनों की मुहलत दे दी। राजपंडित निराश होकर घर गये एवं चिंतित होकर, खटिया डालकर एक ओर बैठ गये। उनकी ११-१२ साल की बेटी ने जब काफी समय तक अपने पिता को उदास एवं चिंतित देखा तो पूछा :

''पिताजी ! क्या बात है ? आप काफी परेशान दिखाई दे रहे हैं !''

पहले तो पिता ने जवाब देने में आनाकानी की किन्तु जब बेटी अत्यंत आग्रह करने लगी तब पिता ने बताया :

''बेटी ! राजा साहब ने चार प्रश्न पूछे हैं जिनका उत्तर देने में विफल होने से मेरा जीना मुश्किल हो जायेगा।''

राजपंडित की वह नन्हीं-सी बालिका सत्संग में जाया करती थी, अतः उम्र छोटी होते हुए भी उसकी समझ बहुत बढ़िया थी। वह बोली :

''पिताजी ! चिंता करने से बुद्धि काम नहीं देती है। अतः आप प्रसन्न रहिए। मैं हर रोज़ ध्यान-भजन करती हूँ और मैंने सत्संग में सुना है कि जब दुःख और मुसीबत आ जाय तब घबराना नहीं चाहिए वरन् शांतचित्त होकर भगवान का ध्यान करके अंतर्यामी राम का आश्रय लेकर अंतर्मुख होकर अंदर से प्रेरणा लेना चाहिए। चिंता नहीं, चिंतन करना चाहिए।

तुलसी साथी विपत के विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्यव्रत राम भरोसा एक॥

पिताजी ! मैं अंतर्यामी परमात्मा के ध्यान में डूबूँगी। शुद्ध हृदय में भगवत्प्रेरणा होगी और कार्य सफल हो जायेगा। अभी तो आप भोजन कीजिए।''

फिर भी राजपंडित ने भोजन नहीं किया। उस नन्हीं-सी बालिका ने भगवान का ध्यान किया और ध्यान करते-करते वह खो गयी। काफी देर के बाद जब उसकी वृत्ति बहिर्मुख हुई तब उसने पुनः कहा :

''पिताजी ! आप भोजन कर लीजिए। आपके प्रश्नों के उत्तर मिल गये हैं।''

राजपंडित : ''क्या उत्तर हैं ?''

लड़की : ''मैं आपको नहीं, राजा साहब को खुद बताऊँगी।''

लड़की के कहने में सच्चाई झलक रही थी। उसकी वाणी से ओज टपक रहा था और उसके चेहरे से विश्वास की खबरें आ रही थीं। पंडित ने बड़ी प्रसन्नता से भोजन कर लिया।

दूसरे दिन लड़की ने रथ मँगवाया। राजपंडित और लड़की दोनों रथ में बैठकर जा रहे थे। रास्ते में उन्हें एक सेठ मिला जो गरीबों को पूड़ी-सब्जी दिये जा रहा था और सबको नम्रतापूर्वक हाथ जोड़े जा रहा था।

लड़की ने पूछा : ''पिताजी ! यह कौन है ?''

राजपंडित : ''बेटी ! यह नगरसेठ है। बड़ा भाग्यशाली है। यह परोपकारी आदमी है और इसकी बड़ी कीर्ति है। राजा साहब भी इस पर बड़े खुश रहते हैं।''

लड़की : ''पिताजी ! उनको बुलाकर रथ में बिठा लीजिए।''

राजपंडित ने प्रार्थना करके सेठ को रथ में बिठा लिया। रथ आगे बढ़ चला। कुछ देर बाद एक हवेली आयी जिसमें से साज-संगीत एवं नाच-गान की आवाज आ रही थी।

लड़की : ''पिताजी ! यह भी किसी सेठ का मकान है क्या ? वहाँसे कीर्तन की आवाज आ रही है ?''

राजपंडित : ''बेटी ! यह भी किसी सेठ की ही हवेली है किन्तु ये जो साज-संगीत की आवाज आ रही है वह कीर्तन नहीं है बल्कि युवक सेठ नृत्य देख रहा है। हास-विलास कर रहा है। इसने न तो किसीको खुद कुछ दिया न किसीको देने दिया। यह तो कंजूस वृत्ति का आदमी है।''

बालिका : ''पिताजी ! उसको भी बुलाइए।''

राजपंडित : ''इस पापी को क्यों बुलाना ?''

बालिका : ''पिताजी ! कम-से-कम आज तो मेरी बात मानें।''

उसे बुलाने आदमी गये तो वह घबराया। वह अपने पैसों को आप ही भोग रहा था, फिर भी भयभीत हुआ। क्यों ? क्योंकि भोग में भय होता है। योग में निर्भयता होती है।

उस अभागे युवक सेठ को भी बुलाकर रथ में बिठा दिया
[illegible]
गया। रथ थोड़ा आगे पहुँचा तो गाँव के बाहर एक पेड़ के नीचे एक साधु बाबा विराजमान दिखाई दिये। उनके सिर एवं दाढ़ी के बाल बढ़े हुए थे तथा जटाएँ बिखरी हुई थीं।

लड़की : ''पिताजी ! ये कौन हैं ?''

राजपंडित : ''बेटी ! ये कोई साधु महाराज हैं।''

लड़की : ''पिताजी ! इनको भी बुलाइए।''

राजपंडित : ''बेटी ! इनको बुलाया नहीं जाता वरन् इनके पास जाया जाता है। ये अभी ध्यानमग्न हैं अतः इनके ध्यान में खलल डालना उचित नहीं है। हम थोड़ी देर इंतजार करेंगे।''

जब साधु महाराज की आँखें खुली तब राजपंडित ने विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हुए कहा : ''महाराज ! कृपा करके रथ पर विराजमान होइए।''

साधु महाराज : ''मुझे जरूरत नहीं है।''

राजपंडित : ''महाराज ! आपको तो जरूरत नहीं है लेकिन हमें आपकी जरूरत है। हमारा रथ पावन होगा।''

*आखिर 'हाँ-ना' करते बाबाजी रथ में बैठ गये। रथ आगे बढ़ चला। आगे एक तालाब पर एक माछीमार फटे-*पुराने कपड़ों में मछली फँसाने के इंतजार में था।

लड़की : ''पिताजी ! यह कौन है ?''

राजपंडित : ''बेटी ! देख, इस अभागे का प्रारब्ध ! अभी सुबह-सुबह लोग जप-ध्यानादि करके पुण्य अर्जित कर रहे होंगे किन्तु यह माछीमार पाप अर्जित कर रहा है।''

लड़की : ''इसको भी रथ में बिठा लो।''

उस माछीमार को भी बुलाकर रथ में नीचे बिठा दिया गया। रथ राज-दरबार तक पहुँचा। सभी लोग यथास्थान बैठ गये। तब लड़की ने राजा का अभिवादन किया और कहा :

''राजन् ! आपने मेरे पिताजी से चार प्रश्न पूछे थे। इसके उत्तर पिताजी की जगह पर मैं दे दूँ तो चलेगा ?''

राजा : ''अरे ! बड़े-बड़े पंडित और विद्वान भी जिसका उत्तर न दे सके उन प्रश्नों का उत्तर तू कैसे देगी ?''

लड़की : ''महाराज ! मैं अवश्य उन प्रश्नों का उत्तर दे सकती हूँ।''

लड़की की साहस एवं आत्मविश्वासयुक्त वाणी को सुनकर पूरी सभा में कौतुहल उत्पन्न हो गया कि 'इतनी छोटी ग्यारह-बारह वर्षीय लड़की ! जिन प्रश्नों का उत्तर बड़े-बड़े विद्वान तक न दे पाये, राजा के उन गूढ़ प्रश्नों का उत्तर देगी !' निर्दोष हृदय की, आत्मविश्वास से पूर्ण वाणी को सुनकर राजा ने सहमति दे दी। तब लड़की ने पूछा : ''आपके *प्रश्नों का उत्तर केवल भाषा में दूँ या प्रायोगिक रूप से दे दूँ ?''*

राजा : ''यदि प्रमाण सहित दो तो और भी बढ़िया होगा।''

लोग देखते रह गये ! लड़की ने नगरसेठ की ओर इशारा करते हुए कहा : ''राजन् ! आपका पहला प्रश्न है : 'है, है, है।' इस प्रश्न का उत्तर ये नगरसेठ हैं। इन्होंने अपने पूर्वजन्म में सत्कर्म किये हैं तभी ये अभी सुखी हैं और अभी इनके कर्म पवित्र हैं अतः इनका भविष्य भी सुखमय है - 'है, है, है।'

आपका दूसरा प्रश्न है : 'है, है, नहीं।' इस प्रश्न का उत्तर यह युवक सेठ है। इसके पहले के सत्कर्म हैं इसलिए इसके पास अभी सुख-सुविधाएँ हैं। किन्तु उन सुख-सुविधाओं का उपयोग यह केवल विषय-भोग में खर्च कर रहा है अतः इसका भविष्य उज्ज्वल नहीं है - 'है, है, नहीं।'

राजन् ! आपका तीसरा प्रश्न है : 'नहीं, नहीं, है।' इस प्रश्न का उत्तर स्वयं ये साधु महाराज हैं जो अभी आपसे भी ऊँचे सिंहासन पर विराजमान हैं। पहले तो मैं इनसे क्षमा चाहती हूँ। इन्होंने पहले कोई दान-पुण्य नहीं किया है इसलिए अभी इनके पास रहने-खाने की सुविधा नहीं है किन्तु अभी *जप-तप-ध्यानादि कर रहे हैं अतः इनका भविष्य पूर्णरूप* से उज्ज्वल है - 'नहीं, नहीं, है।'

आपका चौथा एवं अंतिम प्रश्न है : 'नहीं, नहीं, नहीं।' इस प्रश्न का उत्तर फटे-पुराने कपड़ेवाला वह माछीमार है जिसे दरबानों ने द्वार पर ही रोक दिया है। इसके पहले के कोई सुकृत नहीं हैं इसलिए अभी इसके पास कोई सुख-सुविधाएँ नहीं हैं और यह अभी ऐसा ही अभागा कर्म कर रहा है अतः इसका भविष्य भी उज्ज्वल नहीं है - 'नहीं, नहीं, नहीं।''

युक्तियुक्त एवं प्रमाणित उत्तर, वह भी एक छोटी-सी बालिका के मुख से सुनकर राजा समेत सारी सभा दंग रह गयी !

इसके पीछे मूल कारण क्या था ? बालिका द्वारा किया जानेवाला सत्संग, ध्यान एवं जप। यदि व्यक्ति जप-ध्यान, सत्संग-स्वाध्यायादि करता है, अपने मन को अंतर्मुख करता है तो किसी भी समस्या का समाधान बिना परेशानी के पाना उसके लिए सहज हो जाता है। अतः आप सभी इस कथा से प्रेरणा लेकर अंतर्मुखता का लाभ उठाने के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं... ❁

स्वास्थ्य पर स्वर का प्रभाव

जिस समय जो स्वर चलता है उस समय तुम्हारे शरीर पर उसी स्वर का प्रभाव होता है। हमारे ऋषियों ने इस विषय में बहुत सुंदर खोज की है।

जब सूर्य नाड़ी अर्थात् दायाँ स्वर चलता हो तब भोजन करने से जल्दी पच जाता है लेकिन पेय पदार्थ पीना हो तब चंद्र नाड़ी यानी बायाँ स्वर चलना चाहिए। यदि पेय पदार्थ पीते वक्त बायाँ स्वर न चलता हो तो दायें नथुने को उँगली से दबा दें ताकि बायाँ स्वर चलने लगे। इससे स्वास्थ्य की रक्षा होती है तथा बीमारी जल्दी नहीं आती है।

सुबह उठते समय ध्यान रखें कि जिस ओर के नथुने से स्वर चलता हो उसी ओर का हाथ मुँह पर घुमाना चाहिए तथा उसी ओर का पैर पहले पृथ्वी पर रखना चाहिए। ऐसा करने से अपने कार्य-कलाप करने में सफलता मिलती है ऐसा कहा गया है।

दायाँ स्वर चलते समय मलत्याग करने से एवं बायाँ स्वर चलते समय मूत्रत्याग करने से स्वास्थ्य की रक्षा होती है। इसके विपरीत करने से वैज्ञानिकों के प्रयोग के दौरान विकृतियाँ पायी गयीं।

प्रकृति ने एक साल तक के शिशु पर स्वर का प्रभाव रखा है। शिशु जब पेशाब करता है तब उसका बायाँ स्वर चलता है और मलत्याग करता है तब उसका दायाँ स्वर चलता है।

पुरुषों को पेशाब करते समय बैठकर ही करना चाहिए। खड़े-खड़े पेशाब करने से धातु क्षीण होती है और वीर्यनाश होता है। पाश्चात्य जगत के अंधानुकरण से धातु क्षीण होती है और बच्चे भी कमजोर पैदा होते हैं।

जिस ओर से हवा बहती हो उस ओर मुँह रखकर मल-मूत्र का त्याग करना चाहिए किन्तु सूर्य के सम्मुख मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए।

कुछ लोग मुँह से श्वास लेते हैं। इससे श्वासनली और फेफड़ों में बीमारी के कीटाणु घुस जाते हैं एवं तकलीफ सहनी पड़ती है। अतः श्वास सदैव नाक से ही लेना चाहिए।

कोई खास काम करने जायें उस वक्त जो भी स्वर चलता हो वही पैर आगे रखकर जाने से विघ्न दूर होने में मदद मिलती है।

दायें नथुने से चलनेवाला श्वास दायाँ स्वर एवं बायें नथुने से चलनेवाला श्वास बायाँ स्वर कहलाता है जिसका ज्ञान नथुने पर हाथ रखकर सहजता से प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार स्वर का भी एक अपना विज्ञान है जिसे जानकर एवं छोटी-छोटी सावधानियाँ अपनाकर मनुष्य अपने स्वास्थ्य की रक्षा कर सकता है एवं व्यावहारिक जीवन में भी सफलता प्राप्त कर सकता है।

आयुर्वेद : निर्दोष एवं उत्कृष्ट चिकित्सा पद्धति

आयुर्वेद निर्दोष चिकित्सा पद्धति है। रोगों का पूर्ण उन्मूलन हो और कोई औषध शरीर में प्रवेश करके साईड इफेक्ट उत्पन्न न करे ऐसी यह चिकित्सा पद्धति है। आयुर्वेद में अंतरात्मा में बैठकर समाधिदशा में खोजी हुई स्वास्थ्य की कुंजियाँ हैं। एलोपेथी में रोग की खोज में तत्परता है लेकिन दवाइयों के रिएक्शन तथा साईड इफेक्ट बहुत हैं। अर्थात् दवाइयाँ निर्दोष नहीं हैं क्योंकि बाह्य प्रयोग एवं बहिरंग साधनों से खोजी हुई दवाइयाँ हैं। आयुर्वेद में अर्थाभाव, रुचि का अभाव तथा वर्षों की गुलामी के कारण भारतीय खोजों और शास्त्रों के प्रति उपेक्षा और हीन दृष्टि के कारण चरक जैसे ऋषि और भगवान अग्निवेष जैसे, महापुरुषों की खोजों का फायदा उठानेवाले उन्नत मस्तिष्कवाले वैद्य भी उतने नहीं मिल पाते और तत्परता से फायदा उठानेवाले लोग भी कम होते गये और इसका प्रमाण अभी भी दिखाई दे रहा है।

हम अपने दिव्य और संपूर्ण निर्दोष औषधीय उपचारों की उपेक्षा करके अपने साथ अन्याय कर रहे हैं। सभी भारतवासियों को चाहिए कि आयुर्वेद विभाग को भी एलोपेथी जितना ही महत्त्व दें और उसमें सुयोग्य व्यक्तियों की भर्ती करें। आप विश्वभर के डॉक्टरों का सर्वे करके देखें तो एलोपेथी का कोई डॉक्टर शायद ही मिले जो ८० साल की उम्र में पूर्ण स्वस्थ, प्रसन्न, निर्लोभी हो। लेकिन आयुर्वेद के कई वैद्य हमने देखे जो ८० साल की उम्र में निःशुल्क उपचार करके दरिद्रनारायणों की सेवा करनेवाले, भारतीय संस्कृति की सेवा करनेवाले स्वस्थ सपूत हैं।

हमें बताया गया कि २००० से भी ज्यादा दवाइयाँ जिन पर अमेरिका और जापान में ज्यादा हानिकारक होने के कारण बिक्री पर रोक लगाई गई है वे ही दवाइयाँ अब हमारे भारत में बिक रही हैं। तटस्थ नेता स्वर्गीय मोरारजी भाई देसाई उन्हीं दवाइयों पर बन्दिस लगाना चाहते थे, मगर धन के अंधे स्वार्थ में मानवस्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ करनेवाले दवाई बनानेवाली कंपनियों के संगठन ने रोक नहीं लगाने दिया। ऐसा हमने और आपने सुना है।

अतः हे भारतवासियों ! केमिकलों से और कई विकृतियों से भरी हुई सब दवाइयों को अपने शरीर में डालकर अपने भविष्य को अंधकारमय न बनायें। अब विदेशी लोग भारतीय औषधियों की प्रशंसा करने लगे हैं तब हम भी थोड़ी प्रशंसा कर लेते हैं। तन तो हमारा भारतवासी है मगर दिल-दिमाग विदेशी संस्कार, गुलामी के संस्कार से भरा पड़ा है। रॉक, पॉप और डिस्को म्युजिक से जीवनशक्ति का ह्रास होता है। भारतीय संगीत से जीवन-शक्ति का विकास होता है। 'हरि' शब्द के उच्चारण से यकृत (लीवर), गुर्दे (किडनी) और आँतों पर बड़ी अच्छी असर पड़ती है ऐसा अब डॉ. डायमंड और डॉ. लिवेलिजीया कहते हैं। कीर्तन में मन आनंदित होता है। स्वास्थ्य पर उसके शब्दों का अच्छा प्रभाव होता है।

अतः शुद्ध आयुर्वैदिक उपचार पद्धति और भगवान के नाम का आश्रय लेकर अपना शरीर स्वस्थ रखो, मन प्रसन्न रखो और बुद्धि में बुद्धिदाता का प्रसाद पाकर शीघ्र ही महान् आत्मा, मुक्त आत्मा बन जाओ।

ग्रीष्म ऋतुचर्या

अपने देश में सालभर में छः ऋतुएँ होती हैं और प्रत्येक दो मास में एक-एक ऋतु का विभाजन हुआ है। इन अलग-अलग ऋतुओं में शरीर को स्वस्थ रखने के लिए अलग-अलग योग्य आहार-विहार बनाया गया है। अब वसंत ऋतु की समाप्ति के बाद ग्रीष्म ऋतु का आगमन होता है। इस ऋतु में प्राणियों के शरीर का जलीयांश कम होता है जिससे प्यास ज्यादा लगती है। शरीर में जलीयांश कम होने से पेट की बीमारियाँ, दस्त, उल्टी, कमजोरी, बेचैनी आदि परेशानियाँ उत्पन्न होती हैं। इसलिए ग्रीष्म ऋतु में कम आहार लेकर शीतल जल बार-बार पीना हितकर है। इस ऋतु में हल्के सुपाच्य और शीतवीर्य, मधुर रसयुक्त, स्निग्ध और बलवर्धक खाद्य पदार्थ लें। जैसे कम मात्रा में श्रीखंड, घी से बनी मिठाइयाँ, आम, मक्खन, मिश्री आदि खाना चाहिए। घर में बने हुए शरबत, ठंडाई पियें। नींबू का शरबत, जीरे की शिकंजी आदि पियें मगर बाजारू कोल्डड्रिंक्स से बचें। द्राक्ष, तरबूज, खरबूज, मौसम्बी, एक-दो केले, परवल, पुदीना, करेला, हरा धनिया, नींबू आदि का सेवन करें। इस ऋतु में प्रातः पानी-प्रयोग, वायुसेवन, योगासन, हल्का व्यायाम एवं तेल मालिश लाभदायक है।

मिर्च-मसालेवाला चरपरा भोजन, नमकीन, रूखा, बासी, दुर्गन्धयुक्त पदार्थों का सेवन निषिद्ध माना गया है। ग्रीष्म ऋतु में अधिक गर्मी होने के कारण चाय, कॉफी, सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू वर्ज्य है। इस ऋतु में पित्तदोष की प्रधानता से पित्त के रोग होते हैं। जैसे कि दाह, उष्णता, मूर्च्छा, अपचन, दस्त, नेत्रविकार आदि होते हैं। अतः उनसे बचें। धूप की गर्मी से, लू लगने से बचने के लिए सिर पर कपड़ा रखना चाहिए एवं थोड़ा-थोड़ा पानी पीना चाहिए। यदि लू लग जाय तो लू का असर दूर करने के लिए कच्चे आम को उबालकर उसका रस पानी मिलाकर घोल बनाकर उसमें थोड़ा सिंधव, जीरा, पुदीना डालकर पियें। इन दिनों में फ्रीज का ठंडा पानी पीने से गला, दाँत एवं आँतों पर बुरा प्रभाव पड़ता है इसलिये मटके या सुराही का पानी पियें।

आपका खत मिला...

डॉ. प्रेमजी के. मकवाणा
संत श्री आसारामजी आश्रम,
साबरमती, अमदावाद-५

माननीय प्रमुखश्री,

ह्युमेनीस्ट रेशनालिस्ट सोसायटी, गोधरा।

आपका खत मिला। पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू की लोकप्रसिद्धि के कारणें ईर्ष्या की आग में जलते हुए कुछ निन्दक तत्त्व समाज एवं संत के बीच सेतु बनकर सत्कर्म करने के बजाय संतों की निन्दा करके समाज के साथ अन्याय करते रहते हैं। ऐसे चर्चापत्र या निन्दात्मक लेखों से संतों का तो कुछ भी नहीं बिगड़ता है लेकिन हानि समाज को हो जाती है।

पूज्य बापू ने कल्याण में ५ जनवरी के दिन सत्संग-प्रवचन के दौरान एक प्रसंग का वर्णन किया जिसे सुनकर लाखों लोग गद्गद् हो गये लेकिन कुछ अखबारों ने इसी बात को विकृत करके अपने ढंग से छापकर अपनी इज्जत घटायी। कुछ अच्छे अखबारों ने इसका प्रत्युत्तर भी दिया। जो लोग ऐसा विकृत वर्णन पढ़-सुनकर भ्रमित होते हैं उन लोगों को हमारी विनती है कि वे ५ जनवरी की, कल्याण के सत्संग की कैसटे देखें और सुनें।

चर्चापत्र में जो कुछ भी छपा है उसके विषय में एक सत्यनिष्ठ रेशनालिस्ट के नाते आपको चाहिए कि आप वास्तविकता जानने का प्रयास करें। जिस व्यक्ति का अनुभव कहा गया है उसका नाम व पता प्राप्त करके उसीको पूछकर आप स्वयं सत्य घटना जान सकते थे। किसी भी संत के वचनों को विकृत करके कोई छाप डाले और उसीके आधार पर कोई संस्था या रेशनालिस्ट संतों की मानवसेवा-प्रवृत्ति पर प्रतिबंध लगाने लग जाय तो उनकी मंदबुद्धि पर दया आ जाती है। विज्ञान एवं टेक्नालॉजी का यह युग है। 'वैज्ञानिक दृष्टि से सोचो और जीवन में वैज्ञानिक अभिगम लाओ।' आपका ही यह विधान अगर अपने जीवन में उतारा होता तो आपने अवश्य वैज्ञानिक ढंग से सत्य की खोज की होती।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध डॉ. हर्बर्ट बेन्शन (M.D.) सच्चे वैज्ञानिक हैं। उन्होंने अमेरिका में बैठे-बैठे ही तिब्बत के योगियों को सत्यता सिद्ध करने के लिए पत्र नहीं लिखा। योगियों को चैलेन्ज देने की बेवकूफी उन्होंने नहीं की। कोई अनपढ़ आदिवासी लड़का अगर कहे कि मैं आइन्स्टीन के सूत्र $E = MC^2$ को नहीं मानता हूँ। अणुशक्ति विषयक यह सूत्र सच्चा हो तो आइन्स्टीन मेरे गाँव में आकर सिद्ध करके दिखा दें। तो क्या आइन्स्टीन ऐसा करेंगे ? आइन्स्टीन को समझने के लिए लड़के को पदार्थ विज्ञान का अभ्यास करके अपनी बुद्धि को विकसित करना पड़ेगा। डॉ. हर्बर्ट बेन्शन रेशनालिस्ट एवं वैज्ञानिक होते हुए भी अपनी बुद्धि को विकसित करके योगियों का परीक्षण करने के लिए अमेरिका से तिब्बत गये। वहाँके योगियों से प्रार्थना की और उनके प्रयोगों द्वारा सत्य की खोज की। हमारे रेशनालिस्ट डॉ. हर्बर्ट बेन्शन की तरह सत्य की खोज करने के लिए तैयार ही नहीं हैं। कैसी दयाजनक स्थिति है इन रेशनालिस्टों की !

समाज की निःस्वार्थ सेवा करनेवाले महान् संत अपनी किसी भी सिद्धि का दावा नहीं करते। उनके श्रद्धालु भक्तों को उनकी सिद्धियों के अनुभव होते रहते हैं। सूर्य कभी यह दावा नहीं करता कि वह पृथ्वी के जीवों को प्रकाश देता है। यदि विश्व के सारे उल्लू एकत्रित होकर सूर्य को चुनौती दें कि 'तुम प्रकाश देते हो यह सिद्ध करके दिखाओ' तो सूर्य वैसा करेगा क्या ? जिनके पास श्रद्धा की आँख नहीं है ऐसे निन्दकरूपी उल्लू कितनी ही चुनौतियाँ दिया करें, इससे सूर्य को कुछ भी हानि नहीं होती। सारे विश्व के उल्लू एकत्रित होकर भी सूर्य को प्रकाशित होने से नहीं रोक सकते।

कोई हर्बर्ट बेन्शन जैसा वैज्ञानिक या रेशनालिस्ट वैज्ञानिक परीक्षण करना चाहता हो तो आश्रम में आकर सैकड़ों साधकों के अनुभवों का परीक्षण कर सकता है। अमेरिका की आकाश विज्ञान की संस्था NASA के विज्ञानी Mr. Norm Bernes ध्यान योग शिविर का लाभ लेने हेतु कनाडा से आकर आश्रम में रहते हैं। अन्य कई देश-विदेश के रेशनालिस्ट, विज्ञानी, डॉक्टर, इन्जीनियर, वकील, न्यायाधीश, विश्वप्रसिद्ध उद्योगपति, शिक्षाविद एवं विभिन्न पार्टियों के अग्रिम राजनेता लोग संतश्री के योगसामर्थ्य का लाभ ले रहे हैं। वास्तव में सत्य ही खोजना है तो आप इन लोगों से साक्षात्कार कर सकते हैं। अखबारों के कटिंगों के निन्दात्मक लेखों से आपको क्या सत्य मिलनेवाला है ? प्रत्यक्ष प्रमाणों को देखो। अनुभवियों के हृदयों में झाँककर देखो... फिर सत्य ही सत्य मिलेगा।

आपके उठाये हुए प्रश्न या अन्य किसी भी संदेह के विषय में अगर आप सच्ची जानकारी पाना चाहते हो तो आश्रम में अवश्य आओ एवं वास्तविकता की खुद जाँच करो। तभी आप वास्तव में वैज्ञानिक दृष्टि से सोचनेवाले माने जाओगे। निन्दकों या कुप्रचार करनेवालों के आधार पर संतों का मूल्यांकन करोगे तो आप अवैज्ञानिक दृष्टि से सोचनेवाले अंधश्रद्धालु ही माने जाओगे।

आप अपनेको ह्युमेनिस्ट कहलाते हो। इसीलिए आश्रम की मानवसेवा की प्रवृत्तियों की विस्तृत जानकारी आपको भेजी गई है। निष्काम सेवा प्रवृत्ति के स्वर्ग समान आश्रम के कार्यों में विघ्न डालनेवालों को क्या ह्युमेनिस्ट कहा जा सकता है ? जरा सोचना।

अमदावाद आश्रम में भाइयों के लिए हर माह ११ दिवस के मंत्र अनुष्ठान सत्र शुरू किए जा रहे हैं जो प्रारम्भ पूर्णिमा के ११ दिन पूर्व होंगे तथा समापन पूर्णिमा को होगा। आगामी ३ सत्र १ अप्रैल, ११ मई, व ३० मई से शुरू होंगे। सभी इच्छुक साधक भाई 'साधक निवास कार्यालय' संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद से सम्पर्क करें।

गुड़गावा : यहाँ दशहरा मैदान, न्यू कॉलोनी में दिनांक : १४ से १८ फरवरी '९८ तक पूज्य श्री नारायण स्वामी एवं श्री सुरेशानंदजी के सत्संग-प्रवचनों का सफल कार्यक्रम हुआ जिसमें हजारों-हजारों भाविक भक्तों ने लाभ उठाया।

फरीदाबाद : फरीदाबाद समिति के उत्साही साधकों, कार्यकर्त्ताओं ने बड़े परिश्रम एवं उत्साह से पू. बापू के कार्यक्रम की तैयारियाँ की। उनकी तमन्ना थी कि भगवान सांब सदाशिव के मंदिर की प्राणप्रतिष्ठा का समारोह ब्रह्मज्ञानी संत द्वारा हो।

इस सूक्ष्म दृष्टि एवं भक्ति-भावों का आश्रय लेकर वे पूज्य बापू का कार्यक्रम माँगने के लिए बहुत धैर्य के साथ परिश्रम करते रहे एवं पूज्य बापू से तारीख पाने में सफल भी हों गये। फरीदाबाद में दिनांक : २१ से २३ फरवरी '९८ तक परम पूज्य बापू का सत्संग कार्यक्रम घोषित हुआ।

उड़ीसा में आदिवासी गरीबों में अन्न-वस्त्र बाँटने के कार्यक्रम में फालसी मलेरिया एवं शरीर पर अतिश्रम का प्रभाव होते हुए भी परम पूज्य बापू उड़ीसा के बाद के कार्यक्रम करते आये... इस बीच फालसी मलेरिया का प्रभाव भीतर ही भीतर काम करता रहा...

बड़ी मुश्किल से हरदा, भोपाल और कोटा का कार्यक्रम संपन्न हुआ। फिर भी पूज्य बापू फरीदाबाद के पवित्र भक्तों के लिए मनोबल से शरीर को दिल्ली तक तो ले आये मगर फरीदाबाद के कार्यकर्त्ताओं ने पूज्य बापू की शारीरिक स्थिति देखकर एक शब्द भी नहीं कहा, चलने दिया...

परम पूज्य बापू के बदले श्री नारायण स्वामी का सत्संग-कार्यक्रम हुआ। भगवान सांब सदाशिव के मंदिर की प्राणप्रतिष्ठा हुई। हजारों-हजारों भक्तों की श्रद्धा-भक्ति को देखकर देवता भी दंग रह गये होंगे तथा देवाधिदेव महादेव तो उन पर प्रसन्न ही रहते होंगे। पूज्य बापू तो उन पर प्रसन्न हैं ही!

फरीदाबाद के श्रद्धालु भक्त पूज्य नारायण स्वामी एवं श्री सुरेशानंदजी का सत्संग पाकर संतुष्ट रहे एवं पूज्य बापू को अपने भावों से अपने बीच पाते रहे।

उज्जैन : संत श्री आसारामजी गुरुकुल आश्रम, उज्जैन में दिनांक : २५ से २७ फरवरी '९८ तक महाशिवरात्रि के महोत्सव पर परम पूज्य संत श्री आसारामजी महाराज के सुपुत्र श्री नारायण स्वामीजी के सान्निध्य में त्रिदिवसीय ध्यान योग शिविर का आयोजन किया गया जिसमें १० हजार शिविरार्थियों के अतिरिक्त हजारों श्रद्धालुगण सम्मिलित हुए।

शिविर के पहले दिन गुरुभक्ति का उल्लेख करते हुए श्री नारायण स्वामी ने कहा : **''अगर मनुष्य के दिल में गुरु एवं भगवान के प्रति आस्था है तो उसका फल उसे अवश्य प्राप्त होता है। जैसे कि एकलव्य ने गुरु की प्रतिमा बनाकर भाव के द्वारा धनुर्विद्या सीख ली थी, उसी प्रकार मनुष्य इस भवसागर में भाव से तर सकता है।''**

शिवरात्रि की संध्या पर परम पूज्य सद्‌गुरुदेव ने दूरभाष पर कहा : ''आत्मीय जनों को इस पर्व पर मेरी शुभकामनाएँ एवं आशीर्वाद... मेरा शरीर ठीक न होने के कारण मैं उज्जयिनी नहीं पहुँच पाया इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।'' जैसे ही लोगों ने यह सुना, सबके नेत्रों से अविरत अश्रुपात होने लगा...

शिविर के दौरान श्री नारायण स्वामी ने सत्संग की महिमा, गुरुभक्ति, ध्यान एवं योग की महिमा आदि विषयों को बड़ी सरल एवं सुबोध शैली में व्याख्यायित किया जिसे सुनकर सारी जनता अभिभूत हो उठी।

अमदावाद : इस बार दिनांक : १३ से १५ मार्च '९८ तक होली की शिविर सूरत की जगह पर अमदावाद आश्रम में श्री नारायण स्वामी के सान्निध्य में संपन्न हुई।

दिनांक : १३ मार्च को दूर-दूर से आये हुए पूनम व्रतधारियों का, पूज्यश्री के दर्शन करके ही अन्न-जल ग्रहण करने का व्रत पूर्ण हुआ। शारीरिक रूप से अस्वस्थ

गुड़गावा : यहाँ दशहरा मैदान, न्यू कॉलोनी में दिनांक : १४ से १८ फरवरी '९८ तक पूज्य श्री नारायण स्वामी एवं श्री सुरेशानंदजी के सत्संग-प्रवचनों का सफल कार्यक्रम हुआ जिसमें हजारों-हजारों भाविक भक्तों ने लाभ उठाया।

फरीदाबाद : फरीदाबाद समिति के उत्साही साधकों, कार्यकर्त्ताओं ने बड़े परिश्रम एवं उत्साह से पू. बापू के कार्यक्रम की तैयारियाँ की। उनकी तमन्ना थी कि भगवान सांब सदाशिव के मंदिर की प्राणप्रतिष्ठा का समारोह ब्रह्मज्ञानी संत द्वारा हो।

इस सूक्ष्म दृष्टि एवं भक्ति-भावों का आश्रय लेकर वे पूज्य बापू का कार्यक्रम माँगने के लिए बहुत धैर्य के साथ परिश्रम करते रहे एवं पूज्य बापू से तारीख पाने में सफल भी हों गये। फरीदाबाद में दिनांक : २१ से २३ फरवरी '९८ तक परम पूज्य बापू का सत्संग कार्यक्रम घोषित हुआ।

उड़ीसा में आदिवासी गरीबों में अन्न-वस्त्र बाँटने के कार्यक्रम में फालसी मलेरिया एवं शरीर पर अतिश्रम का प्रभाव होते हुए भी परम पूज्य बापू उड़ीसा के बाद के कार्यक्रम करते आये... इस बीच फालसी मलेरिया का प्रभाव भीतर ही भीतर काम करता रहा...

बड़ी मुश्किल से हरदा, भोपाल और कोटा का कार्यक्रम संपन्न हुआ। फिर भी पूज्य बापू फरीदाबाद के पवित्र भक्तों के लिए मनोबल से शरीर को दिल्ली तक तो ले आये मगर फरीदाबाद के कार्यकर्त्ताओं ने पूज्य बापू की शारीरिक स्थिति देखकर एक शब्द भी नहीं कहा, चलने दिया...

परम पूज्य बापू के बदले श्री नारायण स्वामी का सत्संग-कार्यक्रम हुआ। भगवान सांब सदाशिव के मंदिर की प्राणप्रतिष्ठा हुई। हजारों-हजारों भक्तों की श्रद्धा-भक्ति को देखकर देवता भी दंग रह गये होंगे तथा देवाधिदेव महादेव तो उन पर प्रसन्न ही रहते होंगे। पूज्य बापू तो उन पर प्रसन्न हैं ही!

फरीदाबाद के श्रद्धालु भक्त पूज्य नारायण स्वामी एवं श्री सुरेशानंदजी का सत्संग पाकर संतुष्ट रहे एवं पूज्य बापू को अपने भावों से अपने बीच पाते रहे।

उज्जैन : संत श्री आसारामजी गुरुकुल आश्रम, उज्जैन में दिनांक : २५ से २७ फरवरी '९८ तक महाशिवरात्रि के महोत्सव पर परम पूज्य संत श्री आसारामजी महाराज के सुपुत्र श्री नारायण स्वामीजी के सान्निध्य में त्रिदिवसीय ध्यान योग शिविर का आयोजन किया गया जिसमें १० हजार शिविरार्थियों के अतिरिक्त हजारों श्रद्धालुगण सम्मिलित हुए।

शिविर के पहले दिन गुरुभक्ति का उल्लेख करते हुए श्री नारायण स्वामी ने कहा : ''**अगर मनुष्य के दिल में गुरु एवं भगवान के प्रति आस्था है तो उसका फल उसे अवश्य प्राप्त होता है। जैसे कि एकलव्य ने गुरु की प्रतिमा बनाकर भाव के द्वारा धनुर्विद्या सीख ली थी, उसी प्रकार मनुष्य इस भवसागर में भाव से तर सकता है।**''

शिवरात्रि की संध्या पर परम पूज्य सद्गुरुदेव ने दूरभाष पर कहा : ''आत्मीय जनों को इस पर्व पर मेरी शुभकामनाएँ एवं आशीर्वाद... मेरा शरीर ठीक न होने के कारण मैं उज्जयिनी नहीं पहुँच पाया इसके लिए क्षमा चाहता हूँ।'' जैसे ही लोगों ने यह सुना, सबके नेत्रों से अविरत अश्रुपात होने लगा...

शिविर के दौरान श्री नारायण स्वामी ने सत्संग की महिमा, गुरुभक्ति, ध्यान एवं योग की महिमा आदि विषयों को बड़ी सरल एवं सुबोध शैली में व्याख्यायित किया जिसे सुनकर सारी जनता अभिभूत हो उठी।

अमदावाद : इस बार दिनांक : १३ से १५ मार्च '९८ तक होली की शिविर सूरत की जगह पर अमदावाद आश्रम में श्री नारायण स्वामी के सान्निध्य में संपन्न हुई।

दिनांक : १३ मार्च को दूर-दूर से आये हुए पूनम व्रतधारियों का, पूज्यश्री के दर्शन करके ही अन्न-जल ग्रहण करने का व्रत पूर्ण हुआ। शारीरिक रूप से अस्वस्थ

रहने पर भी '**भगवान भक्त के वश में होते आये...**' इस उक्ति को चरितार्थ करते हुए पूज्यश्री सत्संग मंडप में दोपहर को थोड़ी देर के लिए पधारे। फिर सांध्यकालीन सत्संग में भी परम पूज्य सद्गुरुदेव द्वारा आत्मानुभव से संपन्न अमृतवाणी में अवगाहन करके भक्तजन कृतकृत्य हो उठे। नीरव शांति... सूई गिरने तक की आवाज सुनायी दे ऐसा वातावरण और साथ ही पूज्य सद्गुरुदेव का संग... ऐसा लगा मानो, सब किसी दिव्य लोक में आ बैठे हैं।

दिनांक : १४ मार्च को भी परम पूज्य सद्गुरुदेव करुणा-कृपा करके दो बार पधारे एवं पूज्य श्री नारायण स्वामी ने पलाश के रंग से लोगों को बाहर से तो भीगोया ही, साथ ही मधुर कीर्तन द्वारा भक्ति के रंग में भी सराबोर कर दिया...

दिनांक : १५ मार्च के दिन तो परम पूज्य सद्गुरुदेव के पावन दर्शन एवं सत्संग का लाभ दिन में तीन बार मिला। दोपहर में दैवी कार्य के इच्छुक साधकों ने पूज्य श्री नारायण स्वामीजी से मार्गदर्शन प्राप्त किया एवं शाम को आयी विदाई की वेला... भला, किसका मन होवे ऐसे दिव्य वातावरण को छोड़कर जाने का ? किन्तु हृदय में भाव लिए एवं नेत्रों में अश्रु लिए पूज्यश्री के दिव्य अध्यात्मिक प्रसाद को साथ लेकर सब मानो, इस भाव से विदा हो रहे थे कि 'बापू ! अब फिर जल्दी बुलाना...'

❀ ❀ ❀

पूज्य बापू का स्वास्थ्य यौगिक ढंग से बड़ी तेजी से अच्छा हो रहा है। पूज्यश्री व्यायाम एवं आसन भी करते हैं। पहले पूज्य बापू प्रवृत्ति में समय देते थे, अब उन्होंने निवृत्ति में, ध्यान-समाधि में समय अधिक बढ़ा दिया है। स्थूल जगत की अपेक्षा अब सूक्ष्म जगत में पूज्य बापू का समय अधिक जाता है।

होली शिविर में जो साधक आये उन्होंने इस सूक्ष्म जगत के प्रभाव का एवं पूज्य बापू के दिये गये मौन प्रवचनों का जो आत्मिक अनुभव किया होगा इसे तो वे ही जानते हैं ! उपनिषद् का श्लोक है :

चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्याः गुरुर्युवा।
गुरोऽस्तु मौनव्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः॥

'आश्चर्य है कि वटवृक्ष के नीचे सभी शिष्य अति वृद्ध हैं और गुरु युवक हैं। गुरु मौन रहकर व्याख्यान कर रहे हैं और शिष्यों के सभी सन्देह स्वतः छिन्न हो रहे हैं।'

यह उपनिषद् वचन अब पूज्य बापू के निवृत्तिप्रधान जीवन में प्रत्यक्ष हो रहा है। पहले व्यवहार-जगत में पूज्य बापू गृहस्थाश्रम में दिखते थे, अब उन्होंने वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश पा लिया है। अपने इस संकल्प से पूज्य बापू विशेष प्रसन्न दिखाई देते हैं।

कहा जाता है कि गुरु नानकदेव ६० वर्ष की उम्र में विशेष रूप से निवृत्त हुए थे। कोई उनके पास फटक तक नहीं सकता था। भाई लहणा उनके इस निवृत्त जीवन की महिमा जानते थे। वे ही भाई लहणा गुरु अंगददेव हुए।

प्रवृत्ति समाज के लिए पोषक है तो निवृत्ति भी कारणस्वरूप परमात्मा को प्रगट करने का विशेष सामर्थ्य रखती है।

इस बात का रंज भी है और खुशी भी। रंज इस बात का है कि पहले पूज्य बापू के कार्यक्रम लेने में समाज सफल होता था, वैसे और इतने सारे कार्यक्रम अब नहीं मिल पायेंगे और खुशी इस बात की है कि पूज्य बापू अब मौन एवं एकांत में विशेष समय देंगे। ध्यान योग शिविर में उनके सामने जो श्रद्धा-भक्ति के साथ साधना-भजन करेंगे उन्हें बहुत लाभ होगा। पहले की अपेक्षा अधिक तीव्र गति से अध्यात्मिक तरंगों का लाभ जनता-जनार्दन को मिलेगा और सूक्ष्म जगत में बापू विशेष समय दे पायेंगे जिससे विशेष लाभ होगा। साधकों एवं समितियों की बाह्य सेवाकार्यों की जिम्मेदारी बढ़ गयी तो अध्यात्मिक ऊँचाइयों को छूने का मार्ग भी उन सत्शिष्यों का खुल गया।

जो हुआ अच्छा हुआ, जो हो रहा अच्छा ही है।
होगा जो अच्छा ही होगा, यह नियम सच्चा ही है॥

... इसका दर्शन पथ-पथ पर होता है।

ॐ आनंद... ॐ स्वास्थ्य... पूर्ण स्वास्थ्य है, पूर्ण आनंद है और सबके लिए पूर्ण प्रगति के मार्ग खुल रहे हैं... मंगल गाओ, आनंद मनाओ...

– परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

२८ मार्च से पू. बापू हरिद्वार कुंभ मेले में

ध्यान योग शिविर दिनांक : १० से १४ अप्रैल। ११ अप्रैल को पूनम दर्शन।

स्थान : संत श्री आसारामजी नगर, बिरला फार्म, मोतीचूर, हृषिकेश रोड, हरिद्वार।

फोन : (०१३३) ४२४३३०.

सुखी, स्वस्थ व आनंदमय जीवन की कुंजियों से युक्त पूज्य श्री की प्रेरणादायी अमृतवाणी ।
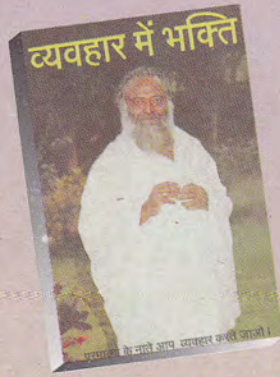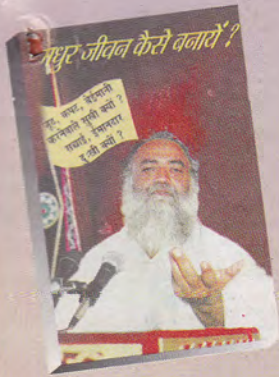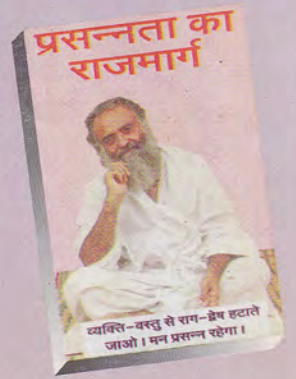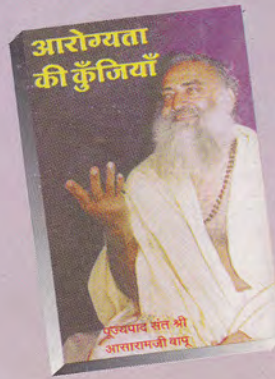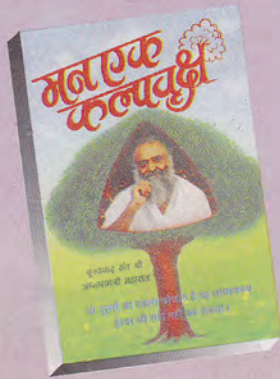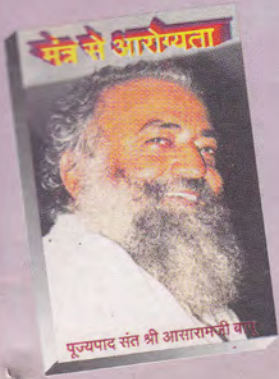
तीन भाग में
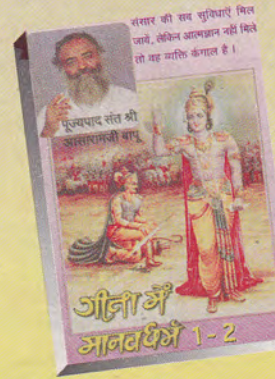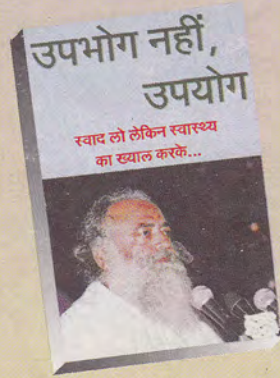
दो भाग में

दो भाग में

यह बीस ओडियो कैसेट का सेट रजिस्टर्ड पोस्ट पार्सल खर्च सहित ४४२ रु. का मनीआर्डर/डी.डी. भेजकर प्राप्त कर सकते है ।

"तू गुलाब होकर महक, तुझे जमाना जाने... देश के लिए भी आप राजनीति में रह लो, गुलाब होकर महको... एक बार आप फिर से प्रधानमंत्री बनो - यह मेरी हार्दिक इच्छा है।" लखनऊ के सत्संग में पधारे थे अटलजी, तब पू. बापू ने उन्हें यह कहा था।

"अडवाणीजी ! आपका परिश्रम और सच्चाई मेरे दिल में आपके प्रति स्नेह उभारता है। सुबह जरूर आयेगी, सुबह का इन्तजार कर..." कुछ दिन पहले कहे थे यह वचन पू. बापू ने और... सुबह आयी भी।

श्री केशुभाई पटेल अपनी श्रद्धा को संत चरणों तक पहुँचाये बिना नहीं रहते। फिर से मुख्यमंत्री बने... पू. बापू के वचन इन्होंने शिरोधार्य किये एवं प्रकृति एवं परमात्माने सहायता की...

जूनागढ़ में इस वर्ष, संवत २०५४ के शिवरात्रि महोत्सव पर संत श्री आसारामजी बापू के कृपापात्र शिष्य श्री सुरेशानंदजी के कार्यक्रम का आयोजन किया गया था जिसमें विश्वविख्यात संत श्री मोरारी बापू भी पधारे थे। उनकी सरलता का बखान पूज्यश्री करते रहते हैं एवं सरलस्वभाव भारती बापू ने तो मंच पर पूज्यश्री के फोटो को दिखाकर अपना स्नेह श्री मोरारी बापू की तरह ही छलकाया... एक ओर हैं श्री मोरारी बापू, दूसरी ओर श्री भारती बापू एवं बीच में दोनों के स्नेहपात्र अपने सुरेशानंद...

PSO LICENCE NO. 207 Regd. No. GAMC/1132. BOMBAY, BYCULLA PSO LICENCE NO. 03 Regd. No. MH/MNV-02